श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

# आत्मधर्म

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३६ : अंक १ [४२१] जुलाई, १९८०

# आत्मधर्म [ ४२१ ]

[ हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक ]


संपादक :
**डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**

प्रबंध संपादक :
**अखिल बंसल**

कार्यालय :
**श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर


कहाँ / क्या


१ मैं देखा आतमरामा
२ ध्रुव में से धर्म लो
३ संपादकीय : जिनवरस्य नयचक्रम्
४ भगवानवबोधसिन्धु [समयसार प्रवचन]
५ अहिंसा व्रत [नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र


आवश्यक सूचना—

सोनगढ़ में लगनेवाला वर्षाकालीन शिक्षण-शिविर इस वर्ष ८ अगस्त' ८० [श्रावणवदी तेरस] से २७ अगस्त' ८० [भादोंवदी दोज] तक होगा। इस संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होने पर अगले अंक में दी जाएगी।

**— संपादक**

# आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३६ [४२१] अंक : १


मैं देखा आतमरामा॥ मैं देखा०॥

रूप फरस रस गंध तैं न्यारा,
दरस-ज्ञान-गुन धामा।

नित्य निरंजन जाकै नाहीं,
क्रोध लोभ मद कामा॥ मैं देखा०॥

भूख-प्यास सुख-दुःख नहिं जाकै,
नाहिं वन पुर गामा।

नहिं साहिब नहिं चाकर भाई,
नहीं तात नहीं मामा॥ मैं देखा०॥

भूलि अनादि थकी जग भटकत,
लै पुद्गल का जामा।

'बुधजन' संगति जिन गुरु की तैं,
मैं पाया मुझ ठामा॥ मैं देखा०॥

# बीस वर्ष पहले

[ इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म ( हिंदी ) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है। ]

## महापात्र

आत्मा ऐसी संप्रदान शक्तिवाला है कि उसका स्वभाव परिणमित होकर स्वयं को केवलज्ञान प्रदान करे और स्वयं ही पात्र होकर उसे ले। किंतु अपनी ऐसी शक्ति को भूलकर अज्ञानी ने अपनी आत्मा को राग का पात्र ही मान रखा है। उसे समझाते हैं कि—अरे भगवान! तेरे आत्मा में तो ऐसी शक्ति है कि राग को तोड़कर स्वयं केवलज्ञान का पात्र हो, उस शक्ति को पहिचान।

अज्ञानी बारंबार (पर्याय-पर्याय में) अपने स्वभाव को भूल कर मिथ्यात्व भाव से विकार को ही प्राप्त करता है; धर्मात्मा ज्ञानी तो अपने स्वभाव को पहिचानकर उसमें से बारंबार, क्षण-क्षण, पर्याय-पर्याय में निर्मल भाव को ही लेते हैं। निर्मल पर्याय को देने की तथा उसी को लेने की आत्मा की संप्रदान शक्ति है। परवस्तु का कुछ लेने की या उसे कुछ देने की शक्ति आत्मा में, द्रव्य में, गुण में या पर्याय में नहीं है तथा राग का देने या लेनेवाला भी आत्मा का स्वभाव नहीं है।

पर्याय में जो क्षणिक रागादि होते हैं, उन्हीं को ग्रहण करनेवाला अपने को माने तो वह जीव अपने स्वभाव में भरी हुई केवलज्ञान लेने की महान पात्रता को नहीं जानता। — **पूज्य कानजी स्वामी**

आत्मधर्म, वर्ष १६, अंक १८१, मई १९६०, पृष्ठ ४२

(गतांक से आगे)

## निश्चय और व्यवहार

दिगम्बर जैन समाज में निश्चय और व्यवहार आज के बहुचर्चित विषय हैं। नयों के नाम पर आज जो भी चर्चा होती है, उसमें निश्चय और व्यवहार ही मुख्य विषय रहते हैं। निश्चय और व्यवहार आज शास्त्रीय चर्चा के ही विषय नहीं रहे हैं, अपितु उनके नाम पर पार्टियाँ भी बन गई हैं। शिविरों की चर्चा भी आज जन-साधारण के द्वारा निश्चय और व्यवहार के नाम से की जाने लगी हैं। यहाँ निश्चयवालों का शिविर लगा है, वहाँ व्यवहारवालों का—इसप्रकार की चर्चा करते लोग आपको कहीं भी मिल जावेंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जो चर्चा कभी विद्वानों की गोष्ठियों तक में न होती थी, वह आज जन-जन की वस्तु बन गई है—इसका एकमात्र श्रेय यदि किसी को है तो वह श्री कानजीस्वामी को है, जिन्होंने जनोपयोगी जिनागम की इस अद्‌भुत प्रतिपादन शैली को घर-घर तक पहुँचा दिया है।

यद्यपि निश्चय-व्यवहार की शैली में निबद्ध जिनागम का अध्ययन-मनन और चर्चा आज सारा समाज करने लगा है, यह एक शुभ लक्षण है; तथापि एक अशुभ प्रवृत्ति भी इसके साथ पनपने लगी है। वह यह है कि यह कलहप्रिय जैन समाज पहिले से ही गाँव-गाँव में अपने व्यक्तिगत राग-द्वेषों के कारण गुटों में विभक्त है, और निरंतर किसी न किसी बात को लेकर लड़ता-झगड़ता रहा है, अब वे ही गुट निश्चय-व्यवहार के नाम पर भी लड़ने-झगड़ने लगे हैं और अपनी व्यक्तिगत कषायों को निश्चय-व्यवहार के नाम से व्यक्त करने लगे हैं तथा कुछ

निहित स्वार्थी लोग निश्चय-व्यवहार की तात्विक चर्चा को सड़कों पर लाकर उत्तेजना फैलाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि में संलग्न हो गये हैं।

जन-सामान्य तो अभी निश्चय-व्यवहार का सही स्वरूप समझ नहीं पाया है, अतः उन्हें भड़काने में इन्हें कभी-कभी और कहीं-कहीं सफलता भी मिल जाती है। समाज में शांति बनी रहे और निश्चय-व्यवहार शैली में निबद्ध जिनागम का मर्म जन-जन तक पहुँच सके, इसके लिए निश्चय-व्यवहार नयों का स्वरूप संपूर्ण समाज समझे—यह बहुत जरूरी है। जिनागम की यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्विवाद प्रतिपादन शैली व्यक्तिगत स्वार्थों और सामाजिक राजनीति में उलझकर उपेक्षित न हो जाये—तदर्थ जिनागम के परिपेक्ष्य में इसका सप्रमाण गंभीरतम विवेचन अपेक्षित है। यही कारण है कि यहाँ इस पर विस्तार से विचार किया जा रहा है।

जिनागम में निश्चय-व्यवहार की अनेक परिभाषाएँ प्राप्त होती हैं।

नयचक्रकार माइल्ल धवल लिखते हैं—

**''जो सियभेदुवयारं धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स।**
**सो ववहारो भणियो विवरीओ णिच्छओ होइ॥२६४॥**[१]

जो एक वस्तु के धर्मों में कथंचित् भेद व उपचार करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं और उससे विपरीत निश्चयनय होता है।''

इसीप्रकार का भाव आलापपद्धति में भी व्यक्त किया गया है:—

**''अभेदानुपचारतया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः। भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इति व्यवहारः।**

अभेद और अनुपचाररूप से वस्तु का निश्चय करना निश्चयनय है और भेद तथा उपचाररूप से वस्तु का व्यवहार करना व्यवहारनय है।''

पंचाध्यायीकार इसी बात को इसप्रकार व्यक्त करते हैं:—

**''लक्षणमेकस्य सतो यथाकथंचिद्यथा द्विधाकरणम्।**
**व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुनः॥**[२]

---

१. द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा २६४

२. पंचाध्यायी, अ-१, श्लोक ६१४

जिसप्रकार एक सत् को जिस किसी प्रकार से विभाग व्यवहारनय का लक्षण है, उसीप्रकार इससे उल्टा निश्चयनय का लक्षण है।''

पंडितप्रवर आशाधरजी लिखते हैं:—

**''कर्त्ताद्या वस्तुनो भिन्ना येन निश्चयसिद्धये।**
**साध्यन्ते व्यवहारोऽसौ निश्चयस्तदभेददृक् ॥१०२॥**[१]

जो निश्चय की प्राप्ति के लिए कर्त्ता, कर्म, करण आदि कारकों को जीव आदि वस्तु से भिन्न बतलाता है, वह व्यवहारनय है तथा अभिन्न देखनेवाला निश्चयनय है।''

इसीप्रकार का भाव नागसेन के तत्त्वानुशासन में भी व्यक्त किया गया है:—

**''अभिन्न कर्तृकर्मादि विषयो निश्चयो नयः।**
**व्यवहारनयो भिन्न कर्तृकर्मादिगोचरः॥**

जिसका अभिन्न कर्ता-कर्म आदि विषय है, वह निश्चयनय है और जिसका विषय भिन्न कर्ता-कर्म आदि हैं, वह व्यवहारनय है।''

आत्मख्याति में आचार्य अमृतचंद्र ने जो परिभाषा दी है, वह इसप्रकार है:—

**''आत्माश्रितो निश्चयनय, पराश्रितो व्यवहारनयः।**[२]

आत्माश्रित कथन को निश्चय और पराश्रित कथन को व्यवहार कहते हैं।''

भूतार्थ को निश्चय और अभूतार्थ को व्यवहार कहनेवाले कथन भी उपलब्ध होते हैं।[३]

अनेक शास्त्रों का आधार लेकर पंडितप्रवर टोडरमलजी ने निश्चय-व्यवहार का सांगोपांग विवेचन किया है[४] जिसका सार इसप्रकार है:—

(१) सच्चे निरूपण को निश्चय और उपचरित निरूपण को व्यवहार कहते हैं।[५]

(२) एक ही द्रव्य के भाव को उस रूप ही कहना निश्चयनय है और उपचार से उक्त द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भावस्वरूप कहना व्यवहारनय है। जैसे—मिट्टी के घड़े को

---

**१. अनांगारधर्मामृत, अ-१, श्लोक १०२**
**२. समयसार गाथा २७२ की आत्मख्याति टीका**
**३. (क) समयसार गाथा ११ (ख) पुरुषार्थसिद्धउपाय, श्लोक ५**
**४. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४८-२५७**
**५. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४८-४९**

मिट्टी का कहना निश्चयनय का कथन है और घी का संयोग देखकर घी का घड़ा कहना व्यवहारनय का कथन है।[१]

(३) जिस द्रव्य की जो परिणति हो, उसे उस ही का कहना निश्चयनय है और उसे ही अन्य द्रव्य की कहनेवाला व्यवहारनय है।[२]

(४) व्यवहारनय स्वद्रव्य को परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है तथा निश्चयनय उन्हीं को यथावत् निरूपण करता है, किसी को किसी में नहीं मिलाता है।[३]

उक्त समस्त परिभाषाओं पर ध्यान देने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:—

१. निश्चयनय का विषय अभेद है और व्यवहारनय का भेद।

२. निश्चयनय सच्चा निरूपण करता है और व्यवहारनय उपचरित।

३. निश्चयनय सत्यार्थ है और व्यवहारनय असत्यार्थ।

४. निश्चयनय आत्माश्रित कथन करता है और व्यवहारनय पराश्रित।

५. निश्चयनय असंयोगी कथन करता है और व्यवहारनय संयोगी।

६. निश्चयनय जिस द्रव्य का जो भाव या परिणति हो, उसे उसी द्रव्य की कहता है; पर व्यवहारनय निमित्तादि की अपेक्षा लेकर अन्य द्रव्य के भाव या परिणति को अन्य द्रव्य तक की कह देता है।

७. निश्चयनय प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र कथन करता है जबकि व्यवहार अनेक द्रव्यों को, उनके भावों, कारण-कार्यादिक को भी मिलाकर कथन करता है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि निश्चय और व्यवहार की विषय-वस्तु और कथन शैली में मात्र भेद ही नहीं अपितु विरोध दिखाई देता है। क्योंकि जिस विषय-वस्तु को निश्चयनय अभेद अखंड कहता है, व्यवहार उसी में भेद बताने लगता है और जिन दो वस्तुओं को व्यवहार एक बताता है, निश्चय के अनुसार वे कदापि एक नहीं हो सकती हैं।

जैसा कि समयसार में कहा है:—

---

**१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४९**

**२. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २५०**

**३. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २५१**

**''ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को।**
**ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो॥२७॥**[१]

व्यवहारनय कहता है कि जीव और देह एक ही हैं और निश्चयनय कहता है कि जीव और देह कदापि एक नहीं हो सकते।''

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि व्यवहार मात्र एक अखंड वस्तु में भेद ही नहीं करता अपितु दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद भी स्थापित करता है। इसीप्रकार निश्चय मात्र एक अखंड वस्तु में भेदों का निषेध कर अखंडता की ही स्थापना नहीं करता अपितु दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में व्यवहार द्वारा प्रयोजनवश स्थापित एकता का खंडन भी करता है।

इसप्रकार निश्चयनय का कार्य पर से भिन्नत्व और निज में अभिन्नत्व स्थापित करना है तथा व्यवहार का कार्य अभेद वस्तु को भेद करके समझाने के साथ-साथ भिन्न-भिन्न वस्तुओं के संयोग व तन्निमित्तक संयोगी भावों का ज्ञान कराना है। यही कारण है कि निश्चयनय का कथन स्वाश्रित और व्यवहारनय का कथन पराश्रित होता है तथा निश्चयनय के कथन को सत्यार्थ सच्चा और व्यवहारनय के कथन को असत्यार्थ उपचरित कहा जाता है।

उक्त उदाहरण में ही देखिए जहाँ व्यवहारनय देह और आत्मा में एकत्व स्थापित करता दिखाई दे रहा है, वहीं निश्चयनय उससे स्पष्ट इंकार कर रहा है। कह रहा है कि जीव और देह कदापि एक नहीं हो सकते।

व्यवहार की दृष्टि संयोग पर है, और निश्चय की दृष्टि असंयोगी तत्त्व पर।

इसीप्रकार:—

**''ववहारेणवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।**
**ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाण गो सुद्धो॥७॥**[२]

ज्ञानी (आत्मा) के चारित्र, दर्शन, ज्ञान यह तीन भाव व्यवहार से कहे जाते हैं, निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है और दर्शन भी नहीं है, ज्ञानी तो एक शुद्ध ज्ञायक ही है।''

इसमें व्यवहारनय ने एक अखंड आत्मा को ज्ञान, दर्शन, चारित्र से भेद करके समझाया है किंतु निश्चय ने सब भेदों का निषेध कर आत्मा को अभेद ज्ञायक स्थापित किया है।

---

१. समयसार, गाथा २७
२. समयसार, गाथा ७

व्यवहारनय ने समयसार की २७वीं गाथा में पर से एकता बताई थी और ७वीं गाथा में एक आत्मा में भेद किये हैं तथा निश्चयनय से २७वीं गाथा में पर से भिन्नता स्थापित की थी और ७वीं में भेद का निषेध कर एकता स्थापित की है।

इसप्रकार व्यवहार का कार्य निज में भेद और पर से अभेद करके समझाना है और निश्चय का कार्य पर से भेद और स्व से अभेद करना है। यही इनके परस्पर विरोध का रूप है।

निश्चय-व्यवहार के संबंध में जो स्थिति उक्त भेदाभेद संबंधी है, वही स्थिति कर्ता-कर्मादि संबंधी भेदाभेद की भी जाननी चाहिए।

जहाँ एक ओर व्यवहारनय से निमित्तादिक की अपेक्षा एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्तादि कहा जाता है और निश्चय से 'मैं ही मेरा कर्ता-धर्ता' कहा जाता है, वहीं दूसरी ओर कर्ता-कर्म का भेद करना ही व्यवहार है और इसप्रकार के भेद का निषेध निश्चय का कार्य माना गया है।

इसप्रकार निश्चय का कार्य अभिन्न कर्ता-कर्मादि षट्कारक के साथ-साथ कर्ता-कर्म के भेद का निषेध भी है तथा व्यवहार का कार्य जहाँ एक ओर कर्ता-कर्म का भेद करना है, वहीं दूसरी ओर भिन्न-भिन्न द्रव्यों के बीच कर्ता-कर्म का संबंध बताना भी है। इन सबका सोदाहरण विशेष विस्तार निश्चय-व्यवहार के भेद-प्रभेदों के कथन में यथास्थान किया जावेगा।

इसप्रकार भेदाभेद संबंधी निश्चय-व्यवहार में कर्ता-कर्मादि संबंधी भेदाभेद भी आ जाता है।

निश्चय-व्यवहार की परिभाषा में भेदाभेद विशेषणों के साथ 'उपचार' विशेषण का भी प्रयोग है। दो द्रव्यों की एकता संबंधी जितने भी संयोगी कथन हैं, वे सब उपचरित ही तो हैं। देह और आत्मा को एक बतानेवाला संयोगी कथन उपचरित व्यवहार ही तो है। एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य का बताना, एक द्रव्य की परिणति को दूसरे द्रव्य की बताना, दो द्रव्यों की मिली हुई परिणति को एक द्रव्य की कहना, दो द्रव्यों के कारण-कार्यादिक में भी इसप्रकार के कथन करना ये सब उपचरित कथन ही हैं।

आत्माश्रित कथन निश्चय और पराश्रित कथन व्यवहार वाली परिभाषाएँ भी इनमें घटित हो जाती हैं। [क्रमशः]

# भगवानवबोधसिन्धुः

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज 'समयसार' की अमृतचंद्राचार्यकृत 'आत्मख्याति' टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आए हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा अड़तीस की टीका में समागत बत्तीसवें कलश पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

**मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका**
**आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ताः।**
**आप्लाव्य विभ्रमतिरसकरिणीं भरेण**
**प्रोन्मग्न एव भगवानवबोधसिन्धुः॥३२॥**

इस कलश में आचार्यदेव ने जगत के सभी जीवों को ज्ञानस्वरूप आत्मा में मग्न होने की प्रेरणा दी है। अड़तीसवीं गाथा में समयसार का पूर्वरंग समाप्त होता है। यह पूर्वरंग का अंतिम कलश है। अनादि काल का अप्रतिबुद्ध जीव प्रतिबुद्ध होने पर अपने स्वरूप का कैसा अनुभव करता है—इसका स्पष्टीकरण अड़तीसवीं गाथा की टीका में करने के बाद आचार्यदेव ने इस कलश की रचना की है। इस कलश में आचार्यदेव जगत के सभी प्राणियों को आत्मरस में मग्न हो जाने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं :—

यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा विभ्रमरूपी चादर को समूल डुबोकर (दूर करके) स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है, इसलिये अब समस्त लोक उसके शांतरस में मग्न हो जाओ। यह शांतरस समस्त लोकपर्यंत उछल रहा है।

भगवान आत्मा चैतन्यसिंधु अर्थात् चैतन्यस्वरूप है। राग आत्मा का स्वभाव नहीं है, ज्ञान और आनंद आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव पर दृष्टि देकर अपने को चैतन्यरूप अनुभव करनेवाले जीव की दृष्टि में चैतन्यसमुद्र सर्वांग प्रगट हुआ है। सर्वांग अर्थात् जैसा आत्मा का स्वभाव है, वैसा परिपूर्णतया दृष्टि में आया है।

ज्ञानसमुद्र आत्मा प्रगट हुआ इसका अर्थ यह नहीं है कि त्रिकाली ध्रुव शुद्ध आत्मा

पहले अप्रगट था और बाद में प्रगट हुआ; द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा देखा जाए तो शुद्ध आत्मा सदा प्रगट ही है, परंतु अनादि से उस पर दृष्टि नहीं थी, उसका ज्ञान नहीं था, इसलिये अप्रगट कहा जाता है। पूर्णानंदस्वरूप आत्मा की दृष्टि होने पर मिथ्यात्वरूपी आड़ी चादर का नाश हो जाता है और आत्मा जैसा है वैसा पर्याय में प्रगट होता है। देह और रागादि मेरे हैं—ऐसे विभ्रमरूपी चादर के नाश होने पर पर्याय में ज्ञानसमुद्र आत्मा स्वयं प्रगट होता है।

देखो! दिगम्बर संतों के वचन मिथ्यात्व को दूर करने के लिये रामबाण औषधि हैं। पंचम काल के संत पंचम काल के जीवों को ज्ञानसमुद्र आत्मा में मग्न होने का उपदेश देते हैं। पंचम काल में आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता, अथवा बिरले ही जीवों को होता है—ऐसा नहीं कहा। आचार्य तो कहते हैं कि मैंने राग से भिन्न अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदस्वरूप आत्मा का अनुभव किया है तो अन्य जीव क्यों नहीं कर सकते? अर्थात् सभी कर सकते हैं। इसलिये समस्त लोक के जीवों को आत्मा में मग्न होने की प्रेरणा दी है।

आचार्यदेव की कैसी मीठी और मधुर वाणी है। भाई कभी अभ्यास नहीं किया, इसलिये कठिन लगता है। परंतु अन्य सब स्वच्छंदता छोड़कर शास्त्राभ्यास, तत्त्वचिंतन और सत्समागम द्वारा स्वरूप का निर्णय करना चाहिये। आत्मा का यथार्थ निर्णय होने पर ही अनुभव के लिये सच्चा पुरुषार्थ प्रगट होगा।

जिसप्रकार विभ्रमरूपी आड़ी चादर को समुद्र में डुबा देने से लबालब भरा हुआ समुद्र दिखाई देने लगता है; उसीप्रकार मिथ्याभ्रांतिरूपी आड़ी चादर का व्यय कर देने से सर्वांग अर्थात् असंख्य प्रदेश से शांतरस में हिलोरें लेता हुआ भगवान आत्मा अनुभव में आता है।

मात्र भ्रांति का पट आड़े आ जाने से अपना स्वभाव दिखाई नहीं देता था, परंतु अब स्त्री-पुत्र-कुटुंब, मन-वचन-काय तथा शुभाशुभ वृत्तियों में एकत्व बुद्धिरूपी भ्रांति को समूलतया नष्ट कर देने पर ज्ञानसमुद्र में स्नान हुआ अर्थात् ज्ञानस्वभावी आत्मा का अनुभव हुआ।

आचार्यदेव आबालवृद्ध सभी को ज्ञानसमुद्र आत्मा में स्नान करने का निमंत्रण देते हैं। फिर कौन नहीं पहुँचेगा? सब पहुँचेंगे। जिसे विरोध हो या कोई बीमार हो तो वह नहीं आयेगा, परंतु आचार्यदेव ने सभी को निमंत्रण दिया है। उनकी भावना है कि इस शांतरस का स्वाद चखे बिना कोई जीव न रह जाये ऐसा आमंत्रण देते हुए वास्तव में आचार्यदेव ने स्वयं को ही भगवान आत्मा के शांतरस में समा जाने की तीव्र भावना व्यक्त की है।

समस्त लोक को शांतरस में स्नान करने की प्रेरणा देकर शांतरस का स्वरूप बताते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि यह शांतरस समस्त लोक में उछल रहा है। लोक के समस्त जीवों में शांतरस हिलोरें ले रहा है अर्थात् सभी जीव शांतरस स्वभावी हैं। समस्त लोक में उछल रहा है का दूसरा अर्थ यह भी है कि केवलज्ञान होने पर समस्त लोकालोक ज्ञात होता है, अर्थात् शांत ज्ञानरस लोक के समस्त पदार्थों को जान लेता है। शांतरसमय आत्मा में समा जाने पर पर्याय में शांतरस उत्कृष्टतया उछलता है।

आचार्यदेव प्रेरणा करते हैं कि भाई! पूर्ण ज्ञान-आनंदसिंधु भगवान आत्मा की दृष्टि कर, उसका सत्कार कर। रागादि का सत्कार करना छोड़कर स्वभाव का सत्कार करने से तुझे अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप शांतरस प्रगट होगा। शांतरस अर्थात् चरित्र की दशा पूर्ण आनंद अर्थात् सुख की दशा। स्वभाव में समा जाने पर ऐसी सुखमय चरित्र दशा प्रगट होती है।

अहो! आचार्य अमृतचंद्रदेव ने इस आत्मख्याति के एक-एक श्लोक में, एक-एक पंक्ति में पूर्ण स्वभाव में समा जाने की प्रेरणा दी है। इस अधिकार के अंत में तो सारे लोक को पूर्ण स्वभाव के आश्रय से पूर्ण शुद्धता प्रगट करने का आमंत्रण दिया है। आत्मा केवलज्ञानरूप परिणमित हो—यही जीव अधिकार की पूर्णता है।

यहाँ तो जो शुद्ध पर्यायरूप परिणमित हो उसी को जीव कहा है। त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा तो वस्तु सदा ही जीव स्वरूप है, परंतु उसके आश्रय से शुद्ध पर्यायरूप परिणमित हो तभी उसे जीव कहा जाता है। कारणपरमात्मा तो त्रिकाल शुद्ध ही है, परंतु उसे स्वीकार करने पर पर्याय में शुद्धता प्रगट होती है, तब उसे शुद्ध कहा जाता है। स्वभाव की अपेक्षा तो निगोद पर्याय के समय अथवा केवलज्ञान पर्याय के समय भी आत्मा तो अभेद, शुद्ध, पूर्णानंदस्वरूप ही है; परंतु आत्मा का स्वभाव अभेद, शुद्ध, पूर्ण है—ऐसा जिसकी श्रद्धा-ज्ञान-आचरण में स्वीकार हो उसके लिये शुद्ध है। शुद्धस्वभाव पर जिसकी दृष्टि नहीं है, उसे स्वभावगत शुद्धता का क्या लाभ हुआ? इसलिये उसके लिए आत्मा शुद्ध है—ऐसा नहीं कहा जाता। जिसकी दृष्टि शुद्ध आत्मा को स्वीकार न करके संयोग और विकार को स्वीकार करती है, उसके लिये तो आत्मा शुद्ध है ही नहीं; क्योंकि मैं शुद्ध हूँ—ऐसा उसे दिखता ही नहीं है। उसके लिये त्रिकाल विद्यमान शुद्ध ज्ञायकस्वभाव अविद्यमान है तथा स्वभाव में अविद्यमान रागादि भाव विद्यमान है।

जैसे समुद्र के आड़े कुछ आ जाए तो जल दिखाई नहीं देता और आड़ दूर होने पर लहराता हुआ समुद्र प्रगट होकर लोगों को प्रेरणा देता है कि इस जल में सभी लोग स्नान करो; उसीप्रकार शुभाशुभ भावों में एकत्वबुद्धिरूप भ्रम की आड़ में ज्ञानसमुद्र भगवान आत्मा दिखाई नहीं देता और रागादि से भेदज्ञान होने पर ज्ञानसमुद्र आत्मा प्रगट अनुभव में आता है। जिसे एकबार आत्मा का अनुभव हो गया उसे स्वयं भी उसमें पूर्ण लीनता की भावना होती है तथा वह दूसरों को भी आत्मा के अनुभव की प्रेरणा देता है।

राग में धर्मबुद्धि के कारण, राग से भिन्न आत्मा का अनुभव नहीं होता। राग चाहे शुभ हो या अशुभ—पराश्रित होने से आकुलतारूप ही है। भगवान की भक्ति, दया, दान, व्रतादि का शुभराग भी मात्र पुण्यबंध का कारण है, मुक्ति का कारण नहीं है। अमृतचंद्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्धियुपाय में रागभाव को बंध का कारण कहा है। राग में धर्म मानना जैनधर्म नहीं है। जिनमत में तो राग में धर्म मानना मिथ्यात्व कहा है—इस मान्यता से आत्मा की हिंसा होती है। जब तक ऐसी मान्यतारूपी चादर रहेगी तब तक ज्ञानसमुद्र भगवान आत्मा में स्नान नहीं किया जा सकता तथा शांतरस का स्वाद नहीं चखा जा सकता।

आचार्यदेव स्वयं वीतरागी शांतरस में मग्न रहते हैं और जगत के जीवों को भी प्रेरणा देते हैं कि भाई जब हम ज्ञानसमुद्र आत्मा में मग्न रहकर शांतरस का स्वाद लेते हैं तब तुम क्यों नहीं ले सकते ? तुम्हारा स्वभाव तो ज्ञान-आनंदस्वरूप ही है, उस पर दृष्टि और स्थिरता करने से अज्ञान की चादर नष्ट हो जाएगी और ज्ञानवृद्धिंगत होते-होते केवलज्ञानरूप परिणमित हो जाएगा और आत्मस्वभाव में भरा शांतरस लोकालोक पर्यंत उछलने लगेगा। अर्थात् केवलज्ञान में लोकालोक के समस्त पदार्थ एकसाथ प्रतिभासित होने लगेंगे।

इसप्रकार इस समयप्राभृत ग्रंथ की आत्मख्याति नामक टीका में टीकाकार ने पूर्व रंगस्थल कहा। इसका विशेष स्पष्टीकरण पंडित जयचंदजी छाबड़ा ने इसप्रकार किया है :—

''यहाँ टीकाकार का यह आशय है कि इस ग्रंथ को अलंकार से नाटकरूप में वर्णित किया है। नाटक में पहले रंगभूमि रची जाती है। वहाँ देखनेवाले, नायक तथा सभा होती है, और नृत्य करनेवाले होते हैं जो विविध प्रकार के स्वांग रचते हैं तथा शृंगारादिक आठ रसों का रूप लौकिक रस है; नाटक में इन्हीं का अधिकार है। नवमा शांतरस है जो कि अलौकिक है, नृत्य में उसका अधिकार नहीं है। इन रसों के स्थायीभाव, सात्विकभाव, अनुभावीभाव,

व्यभिचारीभाव और उनकी दृष्टि आदि का वर्णन रथ ग्रंथों में है, वहाँ से जान लेना।

सामान्यतया रस का यह स्वरूप है कि ज्ञान में जो ज्ञेय आया उसमें ज्ञान तदाकार हुआ, उसमें पुरुष का भाव लीन हो जाये और अन्य ज्ञेय की इच्छा नहीं रहे सो रस है। उन आठों रसों का रूप नृत्य में नृत्यकार बतलाते हैं और उनका वर्णन करते हुए कवीश्वर जब अन्य रस को अन्य रस के समान कर भी वर्णन करते हैं, तब अन्य रस का अन्य रस अंगभूत होने से तथा अन्य भाव रसों का अंग होने से रसवत् आदि अलंकार से उसे नृत्युरूप में वर्णन किया जाता है।

यहाँ पहले रंगभूमिस्थल कहा। वहाँ देखनेवाले तो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं और अन्य मिथ्यादृष्टि पुरुषों की सभा है, उनको दिखलाते हैं। नृत्य करनेवाले जीव-अजीव पदार्थ हैं और दोनों का एकपना, कर्ताकर्मपना आदि अनेक स्वांग हैं। उनमें वे परस्पर अनेकरूप होते हैं, आठ रसरूप होकर परिणमन करते हैं, सो वह नृत्य है।

वहाँ सम्यग्दृष्टि दर्शक जीव-अजीव के भिन्न स्वरूप को जानता है, वह तो इन सब स्वांगों को कर्मकृत जानकर शांतरस में ही मग्न है और मिथ्यादृष्टि जीव-अजीव के भेद नहीं जानते, इसलिये वे इन स्वांगों को ही यथार्थ जानकर उनमें लीन हो जाते हैं, उन्हें सम्यग्दृष्टि यथार्थ स्वरूप बतलाकर, उनका भ्रम मिटाकर, उन्हें शांतरस में लीन करके सम्यग्दृष्टि बनाते हैं। उसकी सूचनारूप में रंगभूमि के अंत में आचार्य ने 'मज्जन्तु' इत्यादि इस श्लोक की रचना की है, वह अब जीवअजीव के स्वांग का वर्णन करेंगे, इसका सूचक है—ऐसा आशय प्रगट होता है।

इसप्रकार यहाँ तक रंगभूमि का वर्णन किया है।''

दर्शकों के हृदय में शृंगार रस की अनुभूति कराने हेतु नाटक के पात्र सुंदर वस्त्राभूषण पहन कर आते हैं, जिसे देखकर अज्ञानी जीवों को राग उत्पन्न होता है। परंतु वह शृंगार रस आत्मा का स्वरूप नहीं है। वस्त्राभूषणों से आत्मा की शोभा नहीं है। पर से अपनी शोभा मानना तो कलंक है।

जिसप्रकार नाटक में एक ही पात्र क्षण में राजा का और क्षण में रंक का वेष बनाकर आता है, किंतु मनुष्य तो एक ही होता है, उसीप्रकार आत्मा तो वही का वही चिदानंद परमात्मा है, परंतु वह क्षण में मनुष्य का शरीर, क्षण में देव का शरीर, क्षण में राग, क्षण में द्वेष—इसप्रकार अनेक स्वांग धारण करता है। अज्ञानी अपने को इन स्वांगरूप ही अनुभव

करता है। उसे ज्ञानी समझाते हैं कि भाई! ये स्वांग अजीव हैं, तुझसे भिन्न हैं तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है, तू इनसे भिन्न निर्दोष परमात्मा है। तू तो चिदानंदस्वरूपी आत्मा है, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद तेरी शोभा है, वस्त्राभूषणों से अपनी शोभा मानते हुए तुझे शर्म नहीं आती? यह शृंगार रस तो पापरस है, संसार परिभ्रमण का कारण है, तेरा स्वरूप नहीं है।

अज्ञानी को हंसने-खिलखिलाने में हास्य रस का अनुभव होता है, परंतु ज्ञानी उसे समझाते हैं कि मेरे तीन लोक के नाथ! यह कौतूहल करना, खिलखिलाना तुझे शोभा देता है? अपना स्वभाव भूलकर जड़ में तुझे क्या कौतूहलता भासित होती है? भाई! यह हास्य रस तेरा स्वभाव नहीं है। तेरा स्वभाव अतीन्द्रिय शांतरसमय है, उसका कौतुहली बनकर शांतरस का स्वाद ले।

दूसरों को मारने का परिणाम रौद्र अर्थात् क्रूर परिणाम है। यह संसार परिभ्रमण का कारण है, आकुलतारूप है। आत्मा तो रौद्र रस से भिन्न शांतरस-स्वभावी है।

दीन-दुःखी प्राणियों को देखकर दयाभाव उत्पन्न होना करुण रस है। यह पुण्य भाव भी आकुलतारूप है। यह रस आत्मा का स्वरूप नहीं है।

शत्रु का संहार करने के परिणाम वीररस रूप हैं। अपने राज्य पर कोई चढ़ाई कर दे तब राजा को उसका संहार करने का रस चढ़ता है। यह रस भी पापरस है, दुर्गति में भ्रमण का कारण है। यह रस आत्मा का स्वरूप नहीं है।

भयानक जंगल में, अंधेरी रात में जो भय उत्पन्न होता है, वह भयानक रस है, परंतु आत्मा तो अविनाशी शाश्वत तत्त्व है। वह किसी अस्त्र-शस्त्र से नष्ट नहीं हो सकता—ऐसा जानकर निर्भय होना चाहिये। सुंदर शरीर में चेचक निकले और उसके दाने-दाने में कीड़े पड़ जाएँ—ऐसा दृश्य देखकर जो ग्लानि का भाव उत्पन्न होता है, वह वीभत्स रस है। भाई! शरीर के रजकण कब किस रूप में परिणमित हों यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। पुद्गल का स्वभाव ही मिलना-बिछुड़ना है। उसकी किसी विशेष अवस्था से घृणा करना पाप भाव है, इसलिये देह से भिन्न आत्मा का अनुभव कर देहरहित सिद्धदशा की साधना करना चाहिये।

पुद्गल की रचना में कोई नवीनता दिखाई देने पर आश्चर्य का भाव होना अद्भुत रस है। परंतु पुद्गल परमाणुओं के मिलने-बिछुड़ने में क्या आनंद? अद्भुत रस तो लौकिक रस है, आत्मा का स्वरूप नहीं है।

उपर्युक्त आठों रस लौकिक हैं, पराश्रित हैं, आकुलतारूप हैं। नवमा शांत रस अलौकिक है। लौकिक नाटक में उसका अधिकार नहीं है। पुण्य-पाप से भिन्न आत्मस्वभाव में एकाग्र होने पर अतीन्द्रिय शांतरस की अनुभूति होती है।

वास्तव में बाह्य पदार्थों से रस उत्पन्न नहीं होता। उनके प्रति रागरूप एकाग्रता ही रस है। लौकिक रसों की उत्पत्ति बाह्य पदार्थों के लक्ष्य से होती है। इसलिये बाह्य वस्तु पर तो आरोप किया जाता है कि खाने-पीने में से नृत्य आदि में से रस आया। बाह्य पदार्थ सुख-दुःख के कारण नहीं हैं। कोई व्यक्ति दस हजार रुपये के हीरे की अंगूठी पहनकर उससे अपनी शोभा मानता है परंतु यदि लुटेरे उसकी अंगूठी लेने के लिये जान से मारने की धमकी देने लगें तो वह उसकी अंगूठी को दुःख का कारण समझने लगता है। पहले राग भाव से अंगूठी पहनने में शोभा मानता था, परंतु अब द्वेष भाव से उसे दुःख का कारण समझने लगा। यदि उसी समय अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में लीन हो तो अतीन्द्रिय शांतरस उत्पन्न हो और यदि लुटेरों का लक्ष्य करे तो भयानकरस उत्पन्न होगा।

ज्ञानी भी हास्य, रौद्र आदि लौकिक रसरूप परिणमित होते हैं, किंतु वे उसे अपना स्वभाव नहीं जानते, अपितु पर के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाला क्षणिक स्वांग ही जानते हैं; इसलिये उनकी दृष्टि में क्षणिक स्वांग का आदर नहीं है, स्वभाव का ही आदर है। बाह्य संयोगों की अनुकूलता-प्रतिकूलता, शरीर की सुंदरता, कुरूपता आदि तो अजीव का स्वांग है, जीव का स्वांग नहीं है-ऐसा जानकर ज्ञानी संयोगों में अभिमान या दीनता छोड़कर शांतरस का ही स्वाद लेते हैं।

मिथ्यादृष्टि अजीव के स्वांग को अपना मानकर उसमें लीन हो जाता है। दो-चार अच्छे लड़के हों और पिताजी-पिताजी कहें तो उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। सुंदर सुशील स्त्री हो कुछ चाँदी के टुकड़े इकट्ठे हो गये हों, सब मिलकर झूला झूलते हों—ऐसे संयोगों में अज्ञानी ऐसा प्रफुल्लित हो जाता है मानो चक्रवर्ती का राज्य मिल गया हो। वह यह मान लेता है कि यह सब संयोग सदा ऐसा ही बना रहेगा। परंतु भाई! यह सब तो जड़ का स्वांग है, पुण्य का उदय क्षीण होने पर क्षणभर में सब संयोग बिखर जायेगा; परंतु अनंत गुणों का पिंड आत्मा शाश्वत है, उसका आश्रय करने से शाश्वत आनंद प्रगट होगा।

देखो! यहाँ सातवें गुणस्थानवाले को नहीं समझाया जा रहा, बल्कि सम्यग्दृष्टि

मिथ्यादृष्टि को समझा रहे हैं कि भाई! अनादि काल से तू आकुलतामय लौकिक रसों का स्वाद ले रहा है और दुखी हो रहा है, परंतु अब ज्ञानस्वभाव का आश्रय करके अलौकिक शांतरस का अनुभव कर।

बत्तीसवें कलश में आचार्यदेव भावना भाते हैं कि मेरे असंख्य प्रदेशों में भरा हुआ शांतरस प्रस्फुटित होओ और सभी जीव इस शांतरस में प्रगट होओ अर्थात् सभी जीव अपनी पर्याय में यह शांतरस प्रगट करो। कोई कहे कि आचार्यदेव ने सबको आमंत्रण दिया है, परंतु अभव्य को शांतरस कैसे प्रगट होगा? परंतु यहाँ भव्य अभव्य का प्रश्न नहीं है। आचार्यदेव ने तो सभी को आमंत्रण देकर अपनी उत्कृष्ट भावना व्यक्त की है कि सभी जीव इस शांतरस में स्नान करो। यदि अपनी अयोग्यता से कोई वंचित रह जाए तो उसके लिये आचार्य क्या कर सकते हैं?

पूर्वरंग के अंत में तत्त्व का कौतूहली बनने की प्रेरणा देते हुए पंडित जयचंदजी छाबड़ा लिखते हैं:—

**नृत्य कुतूहल तत्व को मरियवि देखो धाय।**
**निजानंद रस में छको, आन सबै छिटकाय॥**

हे भाई! तू मरकर भी, चाहे जितनी प्रतिकूलता सहकर भी तत्त्व का कौतूहली बन। देह की सेवा में अनंत भव गंवा दिए, परंतु यह भव आत्मा को समझने में लगा तो पुनः भव धारण नहीं करना पड़ेगा। और सब चिंता छोड़कर आत्मा के रस में ही मग्न हो जा।

# अहिंसा व्रत

परमपूज्य दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ५६वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

**कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।**
**तस्सारंभणियत्तणपरिणामो होइ पढमवदं॥५६॥**

जीवों के कुल, योनि, जीवस्थान, मार्गणास्थान आदि जानकर उनके आरंभ से निवृत्तिरूप परिणाम वह पहला व्रत है।

अब तक निश्चयचारित्र का वर्णन किया। अब व्यवहारचारित्र का वर्णन करते हैं।

जिसको शुद्धात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हुआ है और उसके आश्रय से निश्चयचारित्रदशा प्रकट हुई है, उसको जब विकल्प उठता है, उस समय व्यवहारचारित्र का विकल्प कैसा होता है—वह बतलाते हैं। जो व्यवहार के भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी ज्ञानी को भावना नहीं है, परमार्थ से तो वे ज्ञानी का ज्ञेय हैं, वह राग का विकल्प वास्तव में किंचित् भी धर्म का कारण नहीं है, वह तो बंध का ही कारण है; किंतु मुनिराज के छठे गुणस्थान में स्वभाव का आश्रय पूर्ण नहीं है, हीन आश्रय है अर्थात् वहाँ राग का विकल्प उठ जाता है, उसी का अब व्यवहारचारित्र अधिकार में वर्णन करते हैं। व्यवहारचारित्र बंध का कारण है और निश्चयचारित्र मोक्ष का कारण है—यह बात बाद में कहेंगे।

आगे परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार के प्रारंभ में ही टीका में कहेंगे कि 'अब, सकल व्यवहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष ऐसा जो शुद्ध निश्चयनयात्मक परम चारित्र उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है।

व्यवहारचारित्र बंध का कारण है और निश्चयचारित्र उससे प्रतिपक्ष है, अर्थात् वह मोक्ष का कारण है। व्यवहारचारित्र रागवाला है और निश्चयचारित्र वीतरागी है, परंतु छठी भूमिका में व्यवहारचारित्र होता है। कोई कहे कि मुनि के छठे गुणस्थान में विकल्प होता ही नहीं तो वह मुनि की दशा को जानता ही नहीं।

मुनि को सहज स्वभाव के अवलंबन की ही भावना है, किंतु स्वभाव के आश्रय की कचास में अहिंसादि व्रतों का विकल्प उठता है, उसे यहाँ व्यवहारचारित्र के रूप में कहा गया है।

कुलभेद, योनिभेद, जीवस्थान के भेद और मार्गणास्थान के भेद पहले ही (४२वीं गाथा की टीका में ही) प्रतिपादित कर दिये गये हैं, यहाँ पुनरुक्ति दोष के भय से नहीं कहे।

शुद्धभाव अधिकार में मात्र अभेद परम स्वभाव का ही आश्रय बतलाया था। यहाँ पर्याय का ज्ञान कराते हैं। परजीव की रक्षा या हिंसा तो आत्मा कर ही नहीं सकता, किंतु मुनि को अहिंसा का शुभ विकल्प उठता है, उसको यहाँ व्यवहार से अहिंसाव्रत कहा है।

व्यवहार के अनेक प्रकार आते हैं, वहाँ अज्ञानी उनके आश्रय से लाभ मान लेता है, परंतु उस व्यवहार का रूप तो संसार है। व्यवहार का ज्ञान कराया है, किंतु उसका आश्रय करने के लिये नहीं कहा है, क्योंकि उसके आश्रय का फल तो संसार ही है।

समयसार टीका लिखते हुए पंडित जयचंदजी कहते हैं:—

''प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है और उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। तथा जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तालंब जानकर बहुत किया है, परंतु उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है—कहीं नहीं है। अतः उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से (मुख्यतया से) दिया है कि—'शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है; उसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हो सकता है; उसके जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, तब तक आत्मा के ज्ञानश्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।''

यहाँ व्यवहारचारित्र का विकल्प मुनि के कैसा होता है, वह बताते हैं।

मुनि के (मुनित्वोचित) शुद्धपरिणति के साथ वर्तता जो (हठरहित) देहचेष्टादिक संबंधी शुभोपयोग वह व्यवहार-प्रयत्न है। (शुद्धपरिणति न हो वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग तो व्यवहार-प्रयत्न भी नहीं कहलाता।)

त्रिकालीस्वभाव का अवलंबन निश्चय-प्रयत्न है, वहाँ बीच में शुभ विकल्प आता है, वह व्यवहार-प्रयत्न है। शुद्धस्वभाव के आश्रय बिना अकेला शुभोपयोग तो हठरूप है, वह कहीं व्यवहार-चारित्र नहीं है।

परजीव मरे अथवा न मरे वह तो उसकी पर्याय है, वह कहीं यह आत्मा करता नहीं; किंतु अहिंसा के शुभभाव के प्रयत्नरूप परिणाम के बिना सावद्यपरिहार होता नहीं। पर में प्रयत्न की बात नहीं है, यह तो अपने में शुभपरिणाम के प्रयत्न की बात है। ऐसे शुभ बिना अशुभभावरूप सावद्य का परिहार नहीं होता। इसीलिए प्रयत्नपरायण को हिंसापरिणति के अभाव होने से अहिंसाव्रत होता है। निश्चय से तो शुभभाव भी स्वरूप की हिंसा है, परंतु व्यवहार में पाप के अभाव को हिंसा कहते हैं। मुनि को निश्चय से तो स्वभाव के आश्रय का ही प्रयत्न है, परंतु उसमें लीन न रह सकने की दशा में ऐसी व्यवहार-अहिंसा का विकल्प होता है।

इसीप्रकार आचार्य समंतभद्र ने वृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री नमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए ११९वें श्लोक द्वारा कहा है:—

**''अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं**
**न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।**
**ततस्तत्सिद्धयर्थं परमकरुणो ग्रंथमुभयं**
**भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधरितः॥**

जगत में विदित है कि जीवों की अहिंसा परमब्रह्म है। जिस आश्रम की विधि में लेश भी आरंभ है वहाँ (उस आश्रम में अर्थात् सग्रंथपना में) वह अहिंसा नहीं होती। अतः उसकी सिद्धि के लिये (हे नमिनाथ प्रभु!) परमकरुणावंत ऐसे आपश्री ने उभय ग्रंथ को छोड़ा (द्रव्य तथा भाव दोनों प्रकार के परिग्रह को त्याग कर निर्ग्रंथपना अंगीकार किया।) विकृतवेष तथा परिग्रह में रत नहीं हुए।''

अहो! जीवों की अहिंसा वह परमब्रह्म है, यह बात जगत में प्रसिद्ध है। स्वयं भी जीव है, पुण्य-पाप से अपने स्वभाव की हिंसा न होने देना अर्थात् स्वभाव के अवलंबन से वे भाव उत्पन्न न होने देना—वही अहिंसा परमब्रह्म है।

छठे गुणस्थान में मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प होता है, उसमें पर की हिंसा टली है, तथा स्वभाव का आश्रय प्रकट हुआ है अर्थात् अपने आत्मा की भी हिंसा प्रकटी है। ऐसे मुनि को जैसी परमब्रह्मरूप अहिंसा होती है, वैसी गृहस्थ को नहीं होती। जहाँ लेश भी आरंभ है ऐसे गृहस्थाश्रम में अहिंसा नहीं होती; अतः उस अहिंसा की सिद्धि के लिये हे नमिनाथ भगवान! परमकरुणावंत ऐसे आपश्री ने दोनों ग्रंथियों को (द्रव्य व भाव दोनों परिग्रहों को)

छोड़ा और भावलिंगी निर्ग्रंथ मुनि हुए।

भगवान को किसी के ऊपर करुणा की वृत्ति नहीं होती, परंतु भगवान ने जैसा स्वरूप कहा वैसा अपने ज्ञान में भासित हुआ अर्थात् 'भगवान की करुणा हुई' ऐसा कहा जाता है। स्वयं ने स्वयं के आत्मा की करुणा की वहाँ उपचार से कहते हैं कि हे भगवान! 'आपकी महान करुणा हुई।' श्रीमद् ने भी कहा है कि 'करुणा हम पावत हैं तुम की' वहाँ भी ऐसा ही आशय है।

यहाँ कहते हैं कि हे परमकरुणावंत भगवान! आपने दोनों प्रकार के परिग्रह को त्यागा-यह निमित्त का कथन है। निश्चयसे पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। मुनि के विकृत वेष नहीं होता, सहजदशा होती है। शरीर भी यथाजात प्रमाण सहज नग्न होता है। वस्त्रादि रखना तो विकृत वेष है। एक भी वस्त्र का ताना रखना मुनिपने का निषेधक है, वस्त्र सहित मुनिदशा होती ही नहीं। मुनिदशा में अंतर में सहज वीतरागता है और बाह्य में भी सहज निर्ग्रंथता है। वस्त्रधारी साधु सच्चा साधु नहीं। छठे गुणस्थान की वीतरागता प्रकटे और वस्त्रादि बना रहे—ऐसा नहीं बन सकता—ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

वस्त्रधारी तो सम्यग्दृष्टि साधक ब्रह्मचारी अथवा पाँचवाँ गुणस्थान तक ही हो सकता है, किंतु छठा-सातवाँ गुणस्थानरूप मुनिदशाधारी नहीं हो सकता। इसीलिए यहाँ समंतभद्राचार्य ने कहा कि वस्त्रादि परिग्रह धारण करना तो विकृत वेष है।

हे भगवन! अहिंसा की सिद्धि के लिए आपने वैसे विकृत वेष को छोड़ा, आप परिग्रह में रत नहीं हुये। एकेन्द्रियादि जीवों के मारने का भाव तो कषायभाव है, मुनिदशा में ऐसा भान नहीं होता। उपदेश-स्वाध्यायादि की वृत्ति छठे गुणस्थान में मुनि को उठती है और फिर क्षणमात्र में ही उसे तोड़कर निर्विकल्प हो जाते हैं। इसप्रकार छठे-सातवें गुणस्थान में मुनिराज बार-बार झूलते हैं—ऐसी ही मुनिदशा है। इस दशा के अतिरिक्त बाह्य में वस्त्रादि का छूटना तो द्रव्यलिंग है, तथा जो वस्त्रादि सहित हो, जिसे व्यवहार श्रद्धा भी सच्ची न हो, उसे तो द्रव्यलिंगी भी नहीं कहा जा सकता। वीतरागी परिणति सहित व्यवहार की वृत्ति उठे, उसकी यह बात है। स्वभाव का भान और स्थिरतावाले मुनि को शुभराग आवे उसको व्यवहार से अहिंसाव्रत कहते हैं। निश्चय से तो अंतर में स्वभाव के आश्रय से जो वीतरागता है, वही अहिंसा है—वही धर्म है।

५६वीं गाथा में अहिंसाव्रत का स्वरूप कहा। अब टीकाकार उस गाथा पर श्लोक कहते हैं—

**त्रसहतिपरिणामध्वांतविध्वंसहेतुः,**
**सकलभुवनजीवग्रामसौख्यप्रदो यः।**
**स जयति जिनधर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां,**
**विविधवधविदूरश्चारुशर्म्माब्धिपूरः ॥७६॥**

त्रसघात के परिणामरूप ग्रंथकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीव समूह को जो सुखप्रद है, स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के विविध वध से जो बहुत दूर है और सुंदर सुखसागर का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवंत वर्तता है।

मुनिराज कहते हैं कि जिनधर्म जयवंत वर्तता है। आत्मा के स्वभाव के अवलंबन से जो वीतरागदशा प्रकट हुई उसको जिनधर्म कहते हैं, इसके अतिरिक्त बाहर में जिनधर्म नहीं है। आत्मा के स्वभाव के आश्रय से उद्भूत वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र वह जैनधर्म है। ऐसा जैनधर्म जिसके प्रकट हुआ है, उस मुनि के त्रसघात के परिणामरूप अंधकार का नाश हो गया है। स्वभाव के अवलंबन से मुनि की दशा ही ऐसी होती है कि उन्हें त्रसजीवों के घात का परिणाम होता ही नहीं; इसलिये आत्मा का वीतरागभावरूप जैनधर्म है, वह त्रसघात के परिणाम के नाश का हेतु है।

पुनश्च, जैनधर्म सकल लोकसमूह को सुखप्रद है। आत्मा की जो वीतरागी निर्मल पर्याय प्रकटी वह सुखरूप है और वह जिसके आश्रय से प्रकटे ऐसा द्रव्यस्वभाव भी त्रिकाल सुखरूप है। इस द्रव्य के आश्रय से वीतरागता और सुख प्रकट होता है, अर्थात् जैनधर्म जीवों को सुखप्रद है।

ज्ञायकमूर्ति आत्मा के आश्रय से प्रकट होनेवाला वीतरागभाव सर्व जीवों को सुखदायक है।

जितने अंशों में वीतरागता प्रकटी है, वह जैनधर्म है। जैनधर्म स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के वध से भी बहुत दूर है। मुनि के वीतरागदशा प्रकट होने से एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा के परिणाम उत्पन्न ही नहीं होते—इसलिए एकेन्द्रिय की हिंसा से जैनधर्म बहुत दूर है। स्वभाव के अवलंबन से जितनी वीतरागता प्रकट हुई उतनी तो निश्चय अहिंसा है और छठी भूमिका में

शुभराग की वृत्ति उठने पर त्रस-स्थावर की हिंसा के परिणाम न हों, वह व्यवहार अहिंसा है। सम्यग्दृष्टि के चौथे गुणस्थान में अभी स्वभाव का अवलंबन हीन है तथा वहाँ एकेन्द्रिय के हिंसा के परिणाम भी होते हैं। कारणपरमात्मस्वभाव का जितना अवलंबन लिया उतनी तो वीतरागता प्रकटी और ऐसे स्वभाव के अवलंबन से जहाँ मुनिदशा प्रकटी, वहाँ विकल्प उठने की दशा में किसी जीव की हिंसा करने की वृत्ति नहीं होती।

परजीव को बचा सके या मार सके, यह बात तो वस्तुस्वभाव में है ही नहीं। जैनधर्म तो अंतरंग कारणपरमात्मा के अवलंबन से जितनी वीतरागदशा प्रकटी वह है—वही परमार्थ से अहिंसा है, और बीच में जो शुभविकल्प आया, वह व्यवहार अहिंसा है। ज्ञानी जीव उस शुभराग से धर्म नहीं मानता, परमार्थ से तो वह उसका ज्ञाता ही है। निश्चयधर्म तो स्वाश्रय से प्रकट हुई वीतरागता ही है और शुभ के समय अशुभ नहीं होने दिया इस अपेक्षा से उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। ऐसा जैनधर्म एकेन्द्रिय जीवों के वध से बहुत दूर है।

पुनश्च, जैनधर्म सुखसागर का पूर है। द्रव्यस्वभाव में अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र भरा है, उस द्रव्यस्वभाव का अवलंबन लेने पर पर्याय में आनंद की बाढ़ आ जाती है। ऐसा वीतरागी जैनधर्म जयवंत वर्तता है। त्रिकाल स्वभाव के अवलंबन से प्रकटी वीतरागदशा जयवंत वर्तती है।

# द्रव्यसंग्रह प्रवचन

**वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।**

[गतांक से आगे]

अब कायत्व के व्याख्यान के पहले जो प्रदेशों का अस्तित्व सूचित किया था, उसका विशेष व्याख्यान और किस द्रव्य के कितने प्रदेश हैं, इसका प्रतिपादन करते हैं:—

**होंति असंखा जीवे धम्मा धम्मे अणंत आयासे।**
**मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण तो काओ॥२५॥**

जीव, धर्म तथा अधर्म द्रव्य के असंख्य प्रदेश हैं। आकाश के अनंत प्रदेश हैं; मूर्तपुद्गल द्रव्य के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश हैं, काल द्रव्य का एकप्रदेश है, जिससे वह काय नहीं है।

दीपक के समान संकोच तथा विस्तारयुक्त एक जीव में असंख्य प्रदेश हैं। हाथी अथवा चींटी की पर्याय में भी असंख्य प्रदेश सदृश हैं। कंदमूल के एक शरीर में अनंत जीव हैं, प्रत्येक जीव असंख्य प्रदेशी हैं। केवलीसमुद्घात के काल में संपूर्ण लोक में व्याप्त केवली भगवान के भी असंख्य प्रदेश हैं। तथा सदा स्वभाव से विस्तृत धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्य प्रदेशी हैं। इनमें संकोच-विस्तार नहीं होता। आकाशद्रव्य अनंत प्रदेशी, पुद्गलस्कंध संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेशी है। इन्हीं को तीन प्रकार के प्रदेश कहते हैं—क्षेत्र प्रदेशों को नहीं, क्योंकि पुद्गल अनंत प्रदेशी क्षेत्र में नहीं रहता है। अनंत प्रदेशी स्कंध दो अथवा असंख्य प्रदेशों में समा जाता है, अनंत प्रदेशी क्षेत्र में नहीं रहता। कालद्रव्य एकप्रदेशी है, अतः काय नहीं है।

कालद्रव्य एक प्रदेशी है, इसमें युक्ति दिखलाते हैं।

जिसप्रकार सिद्धत्व पर्याय का उपादान कारण शुद्ध आत्म द्रव्य है। उस सिद्ध पर्याय की अवगाहना पूर्व के अंतिम शरीर से कुछ न्यून प्रमाणवाली है। श्वेताम्बर संप्रदाय सिद्ध की अवगाहना पूर्व शरीर से भाग प्रमाण कहता है, परंतु उसकी बात सही नहीं है। सिद्ध की अवगाहना पूर्व शरीर से कुछ कम है। अर्थात् सिद्धत्व पर्याय का प्रमाण द्रव्य प्रमाण के समान

है। उसीप्रकार कालद्रव्य भी समयरूप पर्याय के अविभागपने से उपादान कारणभूत अविभागी एकप्रदेशी ही होता है अथवा मंदगति से गमन करते हुए पुद्गलपरमाणु को एक आकाश प्रदेश तक ही कालद्रव्य गति का सहकारी कारण होता है। अतः ज्ञात होता है कि कालद्रव्य भी एक प्रदेशी ही है।

अब पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी है, तो भी उपचार से उसके कायत्व है—ऐसा उपदेश देते हैं:—

**एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि।**
**बहुदेसो उबयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू॥२६॥**

एकप्रदेश का धारक परमाणु भी अनेक स्कंधरूप बहुप्रदेश है, इसलिये सर्वत्र परमात्मा उपचार से परमाणु को काय कहते हैं।

काय किसे कहा! इसकी बात चलती है। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, अतः इसे तो 'काय' संज्ञा है। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य भी बहुप्रदेशी होने से 'काय' हैं। कालद्रव्य को 'काय' संज्ञा लागू नहीं पड़ती, क्योंकि वह एकप्रदेशी है।

परमाणु भी एकप्रदेशी है, परंतु काय संज्ञा उपचार से लागू पड़ती है। क्योंकि संख्यात, असंख्यात और अनंत परमाणुओं का स्कंध बनता है और वह स्कंध बहुप्रदेशी होता है। इस उपचार से उसे काय कहते हैं। शरीर को व्यवहार से काया कहते हैं। बहुत परमाणुओं के कार्मण स्कंधों को काय कहना भी व्यवहार है।

पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी है, परंतु बहुत प्रकार से दो से लेकर अनंत परमाणुओं का स्कंध है। अतः व्यवहारनय से उसे काय कहा जा सकता है।

अब इसी बात को स्पष्ट करते हैं:—

जिसप्रकार इस भगवानस्वरूप आत्मा का सामान्य स्वरूप वस्तुरूप से देखा जाये तो शुद्ध है, एक है, देह और कर्म आदि से भिन्न है तथा अवस्था को गौण करो तो शुद्ध निश्चयनय से यह आत्मा शुद्ध और एक है। व्यवहारनय के विषयस्वरूप पर्याय और भेदों को गौण करके देखें तो प्रत्येक आत्मा स्वभाव से शुद्ध है, एकत्वस्वरूप है।

द्रव्यदृष्टि से आत्मा एक और शुद्ध है तो भी अनादिकाल से स्वयं कर्मबंध के वशीभूत होता रहा है। वास्तव में कर्म जड़स्वरूप है और आत्मा को पराधीन नहीं करते, अपितु जीव

स्वयं अपने ढीले (शिथिल) पुरुषार्थ के कारण कर्मों के वश हो जाता है, जिससे अनादि संसार में घिसटना पड़ता है। अज्ञानी जीव ऐसा नहीं मानता और कहता है कि कर्मबंध के कारण संसार में घिसटना पड़ता है, कर्म बहुत बलवान हैं, किसी को नहीं छोड़ते हैं, इत्यादि। परंतु उसकी यह मान्यता ठीक नहीं है। व्यवहारनय से कहें तो आत्मा स्वयं अनादिकाल से कर्मबंध के वशीभूत होकर चारगतिरूप संसार में भटक रहा है। चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण के दुःख उठा रहा है।

अभी भी यदि वह भूल सुधारे, अपनी आत्मा को जानने का पुरुषार्थ करे, कर्म के कारण परतंत्रता नहीं है—ऐसा माने और शुद्धात्मस्वरूप में रम जाये तो चतुर्गति का चक्कर छूटकर उसे भी सुख की प्राप्ति हो सकती है।

संसारी आत्मा अपनी अक्षय, अनुपम ज्ञाननिधि को भूलकर जड़कर्मों के वश हो जाता है। इसलिये जिसमें लोकालोक स्पष्ट झलकता है—ऐसे अपने स्वभाव की सामर्थ्य को पहिचानना चाहिये। यही कर्मों से छूटने का उपाय है।

आत्मा स्वभाव से शुद्ध और एक है। फिर इसे अनेक प्रकारवाला और अशुद्ध क्यों कहा? और पुद्गल परमाणु एक प्रदेशवाला होकर कायवाला कैसे है?—ये दोनों बातें एक जैसी हैं।

आत्मा स्वयं अपने स्वरूप को भूलकर राग-द्वेषादि अवस्था को धारण करता है, इसलिये व्यवहारनय से अनेक प्रदेशवाला होता है। जैस आत्मा के स्वभाव में संसार नहीं है, वैसे ही उसकी पर्याय में संसार नहीं है—ऐसा नहीं है। जीव एकस्वभावी, वीतरागी, ज्ञायक, शुद्ध होने पर भी अपने स्वभाव को भूल जाने से व्यवहारनय के विषय को अपना मानने लगता है। जैसे मैं मनुष्य हूँ, देव हूँ, नारकी हूँ, तिर्यंच हूँ इत्यादि, तथा इन्हीं वैभाविक पर्यायों में एकत्वबुद्धि करके राग-द्वेष के वशीभूत होता है।

ज्ञेय-लोलुपता तो नहीं छोड़ता परंतु ज्ञेयों में यह अच्छा (अनुकूल) और यह बुरा (प्रतिकूल) इसप्रकार भेद डालता है। वह व्यवहारनय अर्थात् पर्यायदृष्टि से मनुष्य, देव आदि पर्यायों के कारण अनेकरूप होता है। एकपने को भूल गया है इसलिये अनेकरूप होता है, स्वभाव को छोड़कर विभावरूप होता है।

तथा पुद्गल परमाणुस्वभाव से एक और शुद्ध है तो भी स्निग्ध और रूक्षत्व के कारण

दो से लेकर अनंत परमाणुवाली स्कंध पर्याय उसकी होती है। अत: सर्वज्ञ भगवान उपचार से उसे बहुप्रदेशी कहते हैं।

यहाँ **प्रश्न** है कि स्कंध के बहुप्रदेशीपने के कारण पुद्गल को 'काय' कहा जाता है तो कालाणु की पर्याय के समूह से घड़ी, दिवस आदि होते हैं, अत: उपचार से कालाणु को भी काय कहें तो क्या दोष है ?

**समाधान :-** परमाणुओं में स्निग्ध, रूक्षत्व गुण होने से बंध होता है और स्कंध बनता है। कालाणु में स्निग्ध, रूक्षत्व गुण नहीं होते—अत: उनमें बंध का अभाव है, वे हमेशा एक-एक और अलग-अलग ही रहते हैं। इसलिये पुद्गल में तो कायपने का उपचार आता है और कालाणु में नहीं आता।

कालाणु एकप्रदेशी है और वैसा ही रहने का उसका स्वभाव है—ऐसा वर्णन सर्वज्ञ भगवान करते हैं।

**प्रश्न :-** अणु तो पुद्गल को कहा जाता है, फिर काल को कालाणु-ऐसा क्यों कहते हो ?

**उत्तर :-** 'अणु' शब्द द्वारा व्यवहारनय से पुद्गलों का कथन किया जाता है। निश्चय से तो वर्णादि गुणों के पूरण-गलन के संबंध से उनको पुद्गल कहा जाता है। वास्तव में तो अणु शब्द सूक्ष्मता का वाचक है। प्रकृष्टपने जो अणु है वह परमाणु है। इस व्युत्पत्ति से परमाणु शब्द अति सूक्ष्मता का सूचक है और वह सूक्ष्मता वाचक अणु शब्द विभागरहित पुद्गल की विवक्षा में पुद्गलाणु को कहता है तथा अविभागी कालद्रव्य की विवक्षा में कालाणु को कहता है।

[क्रमश:]

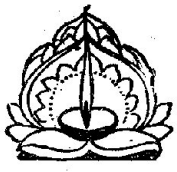

# ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

**प्रश्न :** निर्मल पर्याय को तो अंतर्लीन कहा है न ?

**उत्तर :** वह तो स्वसन्मुख झुकी है, इसलिये उस पर्याय को अंतर्लीन कहा है, परंतु इतने मात्र से वह कहाँ ध्रुव में मिल नहीं गई है। ध्रुव के आश्रय से द्रव्यदृष्टि प्रगट होने के पश्चात् चारित्र की शुद्धि भी पर्याय के आश्रय से नहीं होती। त्रिकाली अंत:तत्त्व जो ध्रुव तल-दल है, उसके आश्रय से ही चारित्र की शुद्धि होती है। यह वस्तु-स्थिति है, भगवान की वाणी है, यह उपदेश भेदज्ञान की पराकाष्ठा का है। प्रभु! निर्मल पर्याय बहिर्तत्त्व है, वह निर्मल पर्याय के आश्रय से टिके नहीं, बढ़े नहीं; वह तो अंत:तत्त्व जो ध्रुवतत्त्व है, उसके ही आश्रय से प्रगट होती है, टिकती है, बढ़ती है। दया-दानादि के शुभ परिणाम तो मलिन बहिर्तत्त्व हैं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम निर्मल बहिर्तत्त्व हैं। द्रव्यदृष्टि तो एक शुद्ध अंत:तत्त्व का ही अवलंबन लेती है।

**प्रश्न :** आत्मज्ञान करने के लिये तो अनेक शास्त्रों का गहन अध्ययन करना पड़ेगा। यदि इसके लिये कोई सरल मार्ग हो तो बतलाइये ?

**उत्तर :** आत्मज्ञान के लिये बहुत से शास्त्रों के पढ़ने की बात ही कहाँ है ? तुम्हारी पर्याय दु:ख के कारणों की तरफ झुकती है, उसे सुख के कारणभूत स्वभाव के सन्मुख लगा दो—इतनी सी बात है। स्वयं आत्मा अनंत-अनंत गुण-संपन्न भगवान ज्ञानानंद स्वरूप है, उसकी महिमा लाकर स्वसन्मुख हो जाओ! इतनी सी ही करनेयोग्य क्रिया है। अपनी पर्याय को द्रव्य-सन्मुख लगा दो—बस आत्मज्ञान का यही मार्ग है।

**प्रश्न :** आचार्यदेव ने केवलज्ञान और श्रुतज्ञान में किस अपेक्षा से समानता कही है ?

**उत्तर :** जैसे भगवान केवली केवलज्ञान से आत्मा का अनुभव करने से केवली हैं, वैसे ही हम भी श्रुतज्ञान से केवल शुद्ध आत्मा का अनुभव करने से श्रुतकेवली हैं—ऐसा

आचार्यदेव कहते हैं। अत: विशेष जानने की आकांक्षा से बस होओ! स्वरूप निश्चलता ही बनी रहे। आहाहा! देखो मुनि अपनी दशा की बात करते हैं कि केवली की तरह हम भी केवल शुद्ध आत्मा का अनुभव करने से श्रुतकेवली हैं। जिसप्रकार अमृतकुंड को कोई सूर्य के प्रकाश से देखे और कोई उसी को दीपक के प्रकाश से देखे तो दृष्टिगोचर वस्तु में कोई अंतर नहीं है; उसीप्रकार केवली तो केवलज्ञान-सूर्य से अमृतकुंभ आत्मा को देखते हैं और श्रुतकेवली दीपक समान श्रुतज्ञान से अमृतकुंभ आत्मा को देखते हैं। यद्यपि सूर्य और दीपक के प्रकाश में अंतर है तथापि उनके द्वारा देखी गई वस्तु में कोई अंतर नहीं है। ऐसा कहकर केवली के साथ समानता की है।

**प्रश्न :** परमाणु में रंगगुण त्रिकाली है, उसकी पर्याय प्रथम समय में काली हो, वह बदलकर द्वितीय समय में लाल, सफेद अथवा पीली हो जाये तो उसका कारण कौन है? यदि रंग-गुण कारण हो तो वह तो स्थायी रहता है, फिर परिणाम में विचित्रता कैसे?

**उत्तर :** वास्तव में तो उस परमाणु में उस समय की पर्याय अपने ही षट्कारक से स्वतंत्र परिणमी है, उसमें उसका रंग-गुण कारण नहीं है। इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने-अपने स्वकाल में स्वतंत्र परिणमन करती है। आहाहा! पर्याय की स्वतंत्रता की बात बहुत सूक्ष्म है।

**प्रश्न :** शुभराग को ज्ञानी हेय मानता है। तो फिर षोडशकारण भावनाओं को क्यों भाता है?

**उत्तर :** ज्ञानी षोडशकारण भावनाओं को भाता नहीं है, परंतु उसे उसप्रकार का राग आ जाता है। वास्तव में ज्ञानी को भावना तो स्वरूप में स्थिर होने की ही होती है, किंतु जब पुरुषार्थहीनता से स्वरूप में ठहर नहीं पाता तब हेयबुद्धि से शुभराग आ जाता है। विचारपूर्वक देखा जाये तो ज्ञानी उन भावनाओं का जाननेवाला ही है—कर्ता नहीं।

**प्रश्न :** हमने सुना है कि अध्यात्म में पुण्य को भी पाप कहते हैं? ऐसा किस आधार पर?

**उत्तर :** जगत में पाप को तो पाप सभी कहते हैं, परंतु अनुभवी ज्ञानीजन तो पुण्य को भी पाप कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी आदि को तो जगत पाप मानता है, परंतु शुभराग को भी ज्ञानीजन पाप कहते हैं, क्योंकि स्वरूप में से पतित होकर ही शुभराग उठता है, अत: वह भी पाप है, अत: स्वराग में भी स्व की हिंसा होती है। प्रवचनसार गाथा ७७ में कहा है कि जो जीव पुण्य-पाप में भेद मानता है—अंतर मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है और अनंत संसार में भटकता है।

इसीप्रकार योगसार, गाथा ७१ में श्री योगीन्दुदेव कहते हैं कि:—

पाप भाव को पाप तो जानते है सब लोग।
पुण्य भाव भी पाप है जाने विरला कोय॥

आहाहा! यह बात तो भव्यजीव के गले उतरेगी, जिसे अंतर में भव का भय लगा हो और भय से मुक्त होना हो।

**प्रश्न :** अहिंसा को परमधर्म कहा है, उसका अर्थ क्या ?

**उत्तर :** परजीवों की दया का भाव तो राग है और राग से स्व की हिंसा होती है तथा राग से लाभ मानने में चैतन्य प्रभु का अनादर है। जिस अहिंसा को परम धर्म कहा है वह तो आत्मा की पर्याय में रागादि की उत्पत्ति ही न होवे—वह है, वही वीतरागी अहिंसा धर्म है। पुरुषार्थ सिद्धयुपाय गाथा ४४ में कहा कि आत्मा में रागादि की अनुत्पत्ति ही अहिंसा और उनकी उत्पत्ति होना ही हिंसा है। ऐसी बात पात्र जीव के बिना किसे रुचे ?

**प्रश्न :** सीमंधर का अर्थ क्या है ? क्या आत्मा सीमंधर है ?

**उत्तर :** सीमंधर अर्थात् वस्तु मर्यादावाली है। प्रभु! तू मर्यादित है, तेरी सीमा—तेरी मर्यादा यह है कि तू राग में न जावे, राग को न करे, अपने त्रिकाली अकषायी नीराग स्वरूप में ही रहे। अत: मर्यादा का, सीमा का धारक आत्मा स्वयं ही सीमंधर है।

**प्रश्न :** परिचय किसका करना चाहिये ?

**उत्तर :** सत्स्वरूप ऐसे आत्मा का परिचय करना चाहिये। जितना जिसका परिचय होगा उतनी ही उसकी परिणति होगी। राग का रसाला होकर जगत के जीवों का परिचय करेगा तो तेरी परिणति पतित हो जायेगी। जिनको शरीरादि का प्रेम है, पुण्य का प्रेम है ऐसे लौकिक जनों का परिचय करेगा तो तेरी परिणति बिगड़ जायेगी। लोग मान-सन्मान तुझे समर्पित करेंगे तो उनके परिचय में तू मर जायेगा। स्त्री पुत्रादि अथवा व्यापारादि के परिचय से तुझे विशेष हानि होगी। तू तो आनंद का नाथ प्रभु है। तेरे परिचय में यदि वह रहेगा तो तुझे आनंद और सुख प्राप्त होगा। जैसे जंगल में सिंह निर्भय होकर विचरता है, उसे हिरण आदि का भय नहीं होता, वैसे ही तू भी निर्भय होकर अपने स्वदेश में विचरण कर।

**प्रश्न :** ज्ञानी को भी शुभराग आता है, तो क्या वह शुद्धात्मा को भूल जाता है ?

**उत्तर :** मुमुक्षु जीव शुभराग में जुड़ान करता है, परंतु शुद्धात्मा की शोधकवृत्ति का अभाव नहीं होता। मुमुक्षु जीव को दया-दान-पूजा-भक्ति आदि के शुभभाव आते अवश्य हैं, परंतु उसकी वृत्ति और झुकाव शुद्धात्मा की तरफ ही रहता है, शुभभाव में तल्लीनता नहीं होती। ज्ञानी के जिन स्वरूपी भगवान आत्मा की शोधक वृत्ति नहीं जाती, तथा शुद्धात्मा का ध्येय छोड़कर शुभराग का आग्रह नहीं रहता। शुभराग से लाभ होगा—ऐसा मानता नहीं, और पर्याय की अशुद्धता भी भूलता नहीं, स्वच्छंद बनता नहीं।

**प्रश्न :** स्वच्छंदता का अर्थ क्या है ?

**उत्तर :** विकारी पर्याय मेरी नहीं है—ऐसा मानकर विकार का सेवन करे, अशुद्धता चाहे जितनी होती जाये तथापि उसका सेवन करता रहे और 'ज्ञानवंत को भोग निर्जरा हेतु हैं'—ऐसा पढ़कर मानने लगे कि हमारे भी भोग के भाव से, विषय-वासना के भाव से निर्जरा हो रही है—वह स्वच्छंदी है। पर्याय में चाहे जैसा विकार हो तो भी हमें क्या ?—ऐसा माने वह स्वच्छंदता है। सच्चा मुमुक्षु ऐसी स्वच्छंदता का सेवन नहीं करता। पर्याय में विकार हो उसे अपना अपराध समझता है—ज्ञान में उसे बराबर जानता है। पाप से अनभिज्ञ नहीं रहता, उसका हृदय करुणा और वैराग्य से ओतप्रोत होता है।

**प्रश्न :** भगवान की वाणी से भी आत्मा जानने में नहीं आता, तो फिर आप ही बतलाइए कि वह आत्मा कैसे जानने में आता है ?

**उत्तर :** भगवान की वाणी वह श्रुत है—शास्त्र है और शास्त्र पोद्गलिक है, अतः वह ज्ञान नहीं है—उपाधि है, तथा उस श्रुत से होनेवाला ज्ञान भी उपाधि है। क्योंकि उस श्रुत के लक्ष्यवाला ज्ञान परलक्ष्यी ज्ञान है और परलक्ष्य से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान स्व को जान सकता नहीं, अतः उसको भी श्रुत के समान उपाधि कहा गया। जिसप्रकार सूत्र-शास्त्र वह ज्ञान नहीं है, बाहर की चीज़ है-उपाधि है; उसीप्रकार उस श्रुत के लक्ष्य से होनेवाला ज्ञान भी बाहर की चीज़ है-उपाधि है। आहाहा! कैसी अनोखी है, वीतराग की शैली ? परलक्ष्यी ज्ञान को भी श्रुत के समान उपाधि कहा है। स्वज्ञानरूप ज्ञप्तिक्रिया से आत्मा जानने में आता है, परंतु भगवान की वाणी से आत्मा जानने में नहीं आता।

**प्रश्न :** क्या श्रुतज्ञानी को केवलज्ञान प्रगट करने की उतावली नहीं होती ?

**उत्तर :** श्रुतज्ञानी को केवलज्ञान होने ही वाला है, अत: उतावली-अधैर्य होता नहीं, क्योंकि वह जानता है कि क्रमबद्धपर्याय में केवलज्ञान प्रगट होने के काल में प्रगट होगा ही, इसलिये उतावली नहीं होती। क्रमबद्ध में अकर्तापना होने से वीतरागता है। पूर्ण स्वरूप में दृष्टि है इसलिये वीतरागता है। जैसे द्वितीया को उदय हुआ है, वह पूर्णचंद्र बनकर ही रहेगा इसमें संशय कैसा ? वैसे ही जिसे अंतर आत्मभान हुआ है, उसे केवलज्ञान होना ही है, केवलज्ञान दौड़ा आ रहा है; वह तो अल्पकाल में प्रगट होगा ही, इसमें संशय या संदेह श्रुतज्ञानी को होता नहीं।

## समाचार दर्शन

### आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर संपन्न

**वाशीम ( महा० ) :-** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित तथा धर्म शिक्षण समिति महाराष्ट्र द्वारा आयोजित बीस दिवसीय चौदहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर अनेक उपलब्धियों के साथ ७ जून ८० को सानंद संपन्न हुआ। इस शिविर में बालबोध प्रशिक्षण में ३०२ एवं प्रवेशिका प्रशिक्षण में ४२—इसप्रकार कुल ३४४ अध्यापक प्रशिक्षण में सम्मिलित हुए जिनमें से बालबोध के ४७ प्रशिक्षणार्थी पढ़ाई से घबड़ाकर मैदान छोड़ गये। परीक्षा में बालबोध प्रशिक्षण में २५५ प्रशिक्षणार्थी सम्मिलित हुए जिनमें २०३ तथा प्रवेशिका में ४२ में से ३५ प्रशिक्षणार्थियों ने प्रथम श्रेणी में सफलता प्राप्त की। इसके साथ ही बाल शिक्षण में ५७५ बालक-बालिकाएँ, प्रौढ़ शिक्षण में एक हजार से अधिक तथा प्रवचन में लगभग पाँच हजार का जनसमुदाय उपस्थित रहता था। सभी ने तत्त्व लाभ लिया।

शिविर में पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा तथा पंडित केशरीचंदजी 'धवल' के प्रवचन; डॉ० भारिल्लजी एवं पंडित रतनचंदजी की प्रशिक्षण कक्षाएँ एवं पंडित ज्ञानचंदजी और पंडित मधुकरजी की प्रौढ़ कक्षाएँ प्रमुख आकर्षण का केंद्र थीं। पंडित नेमीचंदजी पाटनी एवं डॉ० प्रियंकर यशवंत जैन के भी प्रवचन आयोजित किये गये। भगवान महावीर के जीवन और उनके सिद्धांतों में—उनकी वाणी का प्रतिपादन केंद्रबिंदु आत्मा; प्रतिपादन शैली—स्याद्वाद, निश्चय-व्यवहार और चार अनुयोग; आचार-अहिंसा; भगवान बनने का उपाय—भेदविज्ञान, आत्मानुभूति, संयम तथा क्रमबद्धपर्याय आदि विषयों पर हुए डॉ० भारिल्ल के व्याख्यानों को श्रोताओं ने मुक्तकंठ से सराहा।

प्रतिदिन प्रवचनों के पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता था। प्रात: ५ से रात्रि १० तक लगभग १० घंटे नियमित कार्यक्रम चलते थे, जिनमें समाज प्रत्येक कार्यक्रम में बड़े उत्साह से भाग लेता था। दिन में तीन बार बाल शिक्षण की कक्षाएँ भी चलती थीं। अंत के दिनों में दीक्षांत समारोह, प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन, कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का अधिवेशन, भा.वी.वि. पाठशाला समिति का अधिवेशन, महाराष्ट्र-प्रांतीय दि. जैन महासमिति का अधिवेशन, तीर्थक्षेत्र कार्यकर्ता सम्मेलन, कासार दि. जैन समाज का सम्मेलन एवं अ. भा. जैन युवा फैडरेशन द्वारा युवा सम्मेलन आयोजित किये गये जिनके समाचार पृथक् से दिये गये हैं। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए। इस अवसर पर मराठी आत्मधर्म के १५० तथा हिंदी आत्मधर्म, जैनपथ-प्रदर्शक एवं युवा भारती के भी अनेक ग्राहक बने, साथ ही लगभग ८००० का सत्साहित्य भी बिका। शिविर के समापन पर भव्य शोभायात्रा निकाली गयी।

शिविर में भाग लेने के लिये पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान आदि प्रांतों के लोग पधारे थे। प्रतिदिन लगभग १३०० व्यक्तियों का सामूहिक भोजन होता था। भोजन एवं आवास की व्यवस्था उत्तम प्रकार से की गयी थी। श्रीमती विजयाबेन पांगल, श्री धन्यकुमारजी बेलोकर, बाकलीवाल, बज, पाटनी एवं छाबड़ा परिवार तथा वाशीम की सभी समाज का शिविर की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

शिविर में समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों में साहू श्रेयांसप्रसादजी, सेठ लालचंदजी

दोशी, श्री जयचंदजी लोहाड़े, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चंवरे, पंडित माणिकचंदजी भिसीकर, ब्रह्मचारी गजाबेन, पंडित धन्यकुमारजी भोंरे श्री फूलचंदजी झांझरी आदि प्रमुख थे।

## तीर्थक्षेत्र कार्यकर्ता सम्मेलन

दिनांक २-६-८० एवं ३-६-८० को दो दिवसीय दि० जैन तीर्थक्षेत्र कार्यकर्ता सम्मेलन, संपन्न हुआ। सम्मेलन में विभिन्न क्षेत्रों से अनेक कार्यकर्ता गण पधारे। प्रथम दिन सभी कार्यकर्ताओं की बैठक हुई, जिसमें तीर्थक्षेत्र के प्रतिनिधियों द्वारा भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के अधिकारियों के समक्ष अपनी-अपनी कठिनाइयाँ, समस्याएँ और उनके समाधान प्रस्तुत करते हुए दोनों ट्रस्टों से सहयोग की अपेक्षा की गई। दूसरे दिन खुला अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री बाबूलालजी पहाड़े हैदराबाद ने की। मुख्य अतिथि श्री सेठ लालचंद हीराचंद बम्बई थे। पंडित बाबूभाई मेहता ने उद्घाटन भाषण देकर अधिवेशन का उद्घाटन किया। आपने अपने उद्घाटन भाषण में कहा—

''तीर्थ हमारे धर्मायतन हैं, तीर्थ वह है जिनके द्वारा तिरा जाये। आत्मा हमारा परमतीर्थ है, उस आत्मा की पूर्णता जहाँ पंचपरमेष्ठी के निमित्त से हुई वे पावन स्थान ही हमारे कल्याणकारी तीर्थ हैं। काल किसे कवलित नहीं करता; अत: इनकी रक्षा, इनका जीर्णोद्धार करना हमारा परमकर्तव्य है। सब लोग अपने-अपने भोग के लिये तो लाखों रुपया खर्च करते हैं, पर योग के लिये नहीं। ये क्षेत्र हमारे योगियों ऋषियों के साधनास्थल हैं, ये हमें उनकी तपश्चर्या की याद दिलाते हैं। हमारा दिगम्बर समाज इन तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा भी नहीं कर पा रहा है। अब कुछ दिनों से जागृति आई है, तीर्थक्षेत्र कमेटी भी अब सक्रिय है, उसका एक करोड़ के लगभग फंड होनेवाला है, कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट को भी ७८ लाख के वचन प्राप्त हो गये हैं। अब हमें मिलजुलकर कार्य करना है। यदि हमने मिलजुलकर कार्य किया तो ऐसी कोई बात नहीं कि हम अपने तीर्थों की सुरक्षा न कर सकें।''

श्री नेमीचंदजी पाटनी, आगरा ने अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि—''हमें नये मंदिरों के निर्माण को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। हमारा प्रथम कर्तव्य अपने तीर्थक्षेत्रों की सत्व रक्षा का है। इसके लिये क्षेत्रीय कमेटियों के बाकायदा रजिस्ट्रेशन हों। आवश्यक कागजातों की कई प्रतियाँ कराके क्षेत्रीय व केंद्रीय कार्यालयों में रखना चाहिये। प्रत्येक क्षेत्र का पैसा बैंकों में रहना चाहिये तथा जीर्णोद्धार पर सभी का विशेष ध्यान होना चाहिये।''

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—''तीर्थ हमारी संस्कृति के संरक्षक ही नहीं पूज्य भी हैं साथ ही समाज के संगठन के संपर्कसूत्र भी हैं। ये तीर्थ न होते तो हमारा संगठन संभव नहीं था। ये पूर्व से पश्चिम को, दक्षिण से उत्तर को जोड़ने में मदद करते हैं। उत्तर के लाखों यात्री प्रतिवर्ष गोम्मटेश्वर बाहुबली के दर्शनार्थ दक्षिण जाते हैं और लाखों दक्षिणवासी शिखरजी, गिरनारजी आदि की यात्रा करने उत्तर भारत आते हैं। इसप्रकार ये तीर्थ हम सबको जोड़ते हैं। आज पैसे की समस्या नहीं है, दोनों ट्रस्टों के पास दो करोड़ के लगभग हो गया है। हमें आज धन्यकुमारजी बेलोकर जैसे प्राणों की बाजी लगाकर तीर्थों की रक्षा करनेवाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, हमें आज एक नहीं ऐसे सैकड़ों धन्यकुमार चाहिये। हमारा अनुरोध है कि कार्यकर्ताओं का एक शिविर लगे जिसमें बेलोकरजी कार्यकर्ताओं को तीर्थों की रक्षा करने की विधि में प्रशिक्षित करें।'' डॉ० भारिल्लजी ने कोरा सुझाव ही नहीं दिया बल्कि ऐसे शिविर को टोडरमल स्मारक भवन में लगाने का आमंत्रण भी दिया।

सेठ लालचंदजी हीराचंदजी, ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चंवरे, श्रीमती सरयू दोसी ने भी अपने विचार व्यक्त किये। भा० तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री श्री जयचंदजी लोहाडे ने संस्था की गतिविधियों से अवगत कराते हुए सभी तीर्थक्षेत्रों का आवश्यक सहयोग करने का आश्वासन दिया तथा सभी से सहयोग की अपील की। अंत में श्री बाबूलालजी पहाड़े ने अपने अध्यक्षीय भाषण में तीर्थों के प्रति भक्ति व मंगल कामना व्यक्त की।

## दीक्षांत समारोह सम्पन्न

**वाशीम ( महा० ) :** श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का दीक्षांत समारोह दिनांक ७-६-८० को आनंद और उत्साह के वातावरण में संपन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता श्री माणिकचंदजी चंवरे ने की। समारोह के मुख्य अतिथि पंडित माणिकचंदजी भिसीकर थे।

समारोह का शुभारंभ पंडित रतनचंदजी भारिल्ल ने मंगलाचरण द्वारा किया। तत्पश्चात् परीक्षाबोर्ड के रजिस्ट्रार डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने प्रशिक्षणार्थियों को संबोधित किया। सभी उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को मुख्य अतिथि द्वारा प्रमाण-पत्र एवं जैन साहित्य से पुरस्कृत किया

गया। अंत में समारोह के अध्यक्ष तथा मुख्य अतिथि ने अपने भाषणों में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों की सराहना की।

## प्रशिक्षणार्थी-सम्मेलन संपन्न

**वाशीम :** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित शिविर शृंखला में वाशीम में संपन्न हुए चौदहवें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में आगंतुक प्रशिक्षणार्थी बंधुओं का यह सम्मेलन दिनांक ६-६-८० को श्री धर्मचंदजी बेलोकर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन में प्रशिक्षणार्थी बंधुओं ने शिविर के माध्यम से जो ज्ञान प्राप्त किया, जो प्रेरणा पाई-उसे अपने शब्दों में व्यक्त किया। मंगलाचरण एवं अतिथियों के स्वागत के उपरांत प्रमुख प्रशिक्षक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने प्रशिक्षणार्थी अध्यापकों को संबोधित करते हुए कहा—'तत्त्वप्रचार कभी भी अशांति या हिंसा से नहीं हो सकता। इसके लिये संघर्ष का रास्ता नहीं अपितु शांति एवं अहिंसा का रास्ता अपनाना पड़ेगा।' ज्ञानयज्ञ की चर्चा करते हेतु आपने कहा—'ज्ञानयज्ञ चलानेवाले महान नहीं अपितु ज्ञान से लाभ लेनेवाले महान हैं। आप अपने जीवन एवं कार्यों से यह प्रमाणित करें कि आप किसी ज्ञानयज्ञ में गए थे। इन बीस दिनों में आपने जो सीखा वह चक्रवृद्धि ब्याज के समान गाँव-गाँव में बढ़ेगा ऐसी आशा है।

श्री देवकुमारजी कानेड़, एम.ए., बी.एड. ने कहा—'यहाँ का वातावरण एवं रुचि देखकर हृदय गद्‌गद् हो उठा। जैन धर्म का सच्चा स्वरूप मुझे यहीं पता लगा।' श्री गंभीरकुमार चोगले ने कहा—'शिक्षण, प्रशिक्षण तथा प्रवचन यह त्रिमुखी अमृतधारा यहाँ बही है। यहाँ मुझे जो लाभ मिला मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता।' श्री अरुणकुमार सराक ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा—'आज अध्यात्मज्ञान बहुत आवश्यक है। मैंने सभी बालबोध भागों का बंगाली में अनुवाद किया है, अब उनके शीघ्र प्रकाशित होने पर मैं अधिक से अधिक पाठशालाएँ खोलकर पाँच वर्ष के भीतर ऐसा कुछ कर दिखाऊंगा जो देखने लायक होगा।' कु० सुनंदा बोपलकर ने कहा—'आज तक हम कितने अज्ञान में थे, यह शिविर में आने से ही स्पष्ट हुआ।' श्री देवकुमार बरुड़ ने अपनी भावना निम्न शब्दों में व्यक्त की—'मैं अध्यापक हूँ, मैंने लौकिक प्रशिक्षण तो अनेक प्राप्त किये परंतु यह प्रशिक्षण मुझे कई मायनों में नया लगा।' श्री अजितकुमार जैन के शब्दों में—'मैं अभी तक जिस राह पर था, वह अंधकार का रास्ता था परंतु डॉ० भारिल्लजी ने इस शिविर के माध्यम से मुझे सही रास्ता दिखाया है। आजकल लहर

चल रही है, वोट फॉर कांग्रेस, वोट फॉर भाजपा; परंतु मैं कहूँगा वोट फॉर सम्यग्दर्शन। मेरी भावना है कि मैं अपने गाँव पहुँचकर मुहल्ले-मुहल्ले में पाठशाला खोलूँ। इस अवसर पर श्री विजयकुमार कुरकेटे, सुशीला बहन, श्री हरकचंदजी गंगवाल तथा श्रीमती रजनी रमाकांत ने भी अपनी-अपनी भावनाएँ व्यक्त कीं।

## दि० जैन कासार परिषद् का अधिवेशन

दिनांक ३०-५-८० को वाशीम में दिगम्बर जैन कासार परिषद् का सम्मेलन श्री अनंत राजाराम सालवी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन श्री बाबूराव गरगट्टे कोल्हापुर ने किया। डॉ० प्रियंकर जैन ने अतिथियों का परिचय देते हुए सभा का संचालन किया। अधिवेशन में भारत से सम्मानित श्रीचंद्रकांत डोर्ले एवं श्री रामचंद्र वनकुंद्रे, श्री अभयकुमार वनकुंद्रे, श्रीपाल वनकुंद्रे, बाबूराव लोखंडे, श्री प्रभाकर हलगे तथा श्री उज्ज्वलकुमार मोहरे आदि प्रमुख अतिथि थे। अधिवेशन में लगभग ३५० कार्यकर्ता विभिन्न क्षेत्रों से पधारे। अधिवेशन में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व आध्यात्मिक विकास के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये। कासार परिषद की स्मारिका का विमोचन श्री चंद्रकांत डोर्ले ने किया। प्रमुख वक्ताओं में उक्त अतिथियों के अतिरिक्त डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चंवरे तथा श्री दत्तोपंत लोखंडे आदि प्रमुख थे।

## कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का अधिवेशन

**वाशीम ( महा० ) :** श्री वीतराग-विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का अधिवेशन संपन्न हुआ। मंगलाचरण के उपरांत ट्रस्ट के संयुक्त मंत्री श्री बसंतभाई दोसी ने रिपोर्ट प्रस्तुत की। महामंत्री श्री धन्यकुमारजी बेलोकर ने ट्रस्ट की गतिविधियों का परिचय दिया। अंत में ट्रस्ट के अध्यक्ष पंडित बाबूभाई मेहता ने जीवंततीर्थ जिनवाणी और तीर्थक्षेत्रों के जीर्णोद्धार की आवश्यकता पर बल दिया तथा ट्रस्ट के निर्माण का इतिहास बताते हुए इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला। आपने उक्त ट्रस्ट के अंतर्गत चलनेवाले श्री टोडरमल दि० जैन सि० महाविद्यालय की प्रगति से भी समाज को अवगत कराया।

## साहू श्रेयांसप्रसाद जैन संस्कृति मंदिर का शिलान्यास

दिनांक ४-६-८० को अंतरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर में श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी के कर-

कमलों द्वारा संग्रहालय का शिलान्यास किया गया। उक्त संग्रहालय का नाम 'साहू श्रेयांसप्रसाद जैन संस्कृति मंदिर' रखा गया। संग्रहालय के निर्माण हेतु साहूजी ने १ लाख रुपए की धनराशि प्रदान की। साथ ही तीर्थक्षेत्र कमेटी ने १५ हजार तथा कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट ने ११ हजार की राशि प्रदान की। इस संग्रहालय में यत्र-तत्र बिखरी एवं खंडित मूर्तियाँ विराजमान की जावेंगी।

## महाराष्ट्र प्रांतीय महासमिति का सम्मेलन

दिनांक ४-६-८० को मध्याह्न दि० जैन महासमिति (पश्चिमांचल) महाराष्ट्र शाखा का सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता साहू श्रेयांसप्रसादजी ने की। साहूजी के द्वारा विभिन्न कार्यकर्ताओं को प्रशस्ति पत्र भेंट किये गये। सम्मेलन में श्री श्रेणिक अन्नदाते संपादक तीर्थंकर (मराठी), श्री दिनकरजी महाजन एवं श्रीमती सरयू दोसी आदि ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

— अखिल बंसल

## पंडित श्री रमेशचंदजी जैन का निरीक्षण दौरा

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक पंडित श्री रमेशचंदजी जैन इटावावाले पाठशालाओं के निरीक्षणार्थ दौरे पर हैं। ये शिवपुरी, कोलारस, म्याना, गुना, कुंभराज, राधोगढ़, बारां, छबड़ा, पिडावा, कोटा, झालावाड़, झालरापाटन, बूंदी, लाखेरी, इंदरगढ़, देवली, केकड़ी, सावर, नसीराबाद, अजमेर, भीलवाड़ा, बिजौलिया, प्रतापगढ़, उदयपुर, कलिंजरा, बागीदौरा, नौगांवा, बडौदिया, बांसवाड़ा, दाहौद, रतलाम, इंदौर, उज्जैन इत्यादि नगरों तथा इनके आस-पास नगरों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण करेंगे। समाज पंडितजी को निरीक्षण में सहयोग दें तथा उनके प्रवचनों का लाभ लेवें यह निवेदन है।

## वेदी-प्रतिष्ठा सानंद संपन्न

**इंदौर (म.प्र.) :** दिनांक २ जून ८० से ५ जून ८० तक स्थानीय नेमीनगर में वेदी प्रतिष्ठा सानंद संपन्न हुई। प्रतिष्ठा की कार्यविधि पंडित नाथूलालजी शास्त्री द्वारा संपन्न की गयी। इस अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री नीमच तथा ब्रह्मचारी हेमचंदजी भोपाल पधारे। तीनों विद्वानों के प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा से समाज ने लाभ लिया। विशाल रथयात्रा का आयोजन भी किया गया।

इसके पश्चात् पंडित ज्ञानचंदजी एक-एक दिन को अशोकनगर एवं कोटा भी पधारे

जहाँ आपके मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ पर प्रभावी प्रवचन हुए।

**बम्बई ( महा० ) :** दिनांक २१-६-८० को पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। जवेरी बाजार स्थित सीमंधर जिनालय में दोनों समय आपके मोक्षमार्गप्रकाशक पर तात्त्विक प्रवचन हुए। दादर, घाटकोपर तथा मलाड़ में भी आपके प्रवचन आयोजित किये गये। इस अवसर पर कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व की घोषित राशि तथा कुछ नवीन राशियाँ प्राप्त हुई हैं। **—मानिकलाल आर. गाँधी**

**एटा ( उ०प्र० ) :** दिनांक ४-६-८० को पंडित देवचंदजी जैन सहारनपुरवाले पधारे। स्थानीय जैन पंचायती बड़े मंदिर में समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा सत्तास्वरूप पर आपके प्रवचन आयोजित किये गये। ब्रह्मचारी लाभानंदजी भी ७-६-८० को पधारे। समाज ने उक्त विद्वानों के प्रवचनों से लाभ उठाया। **— अजित जैन**

## श्रुतपंचमी उत्साहपूर्वक मनायी

**विदिशा ( म०प्र० ) :** दिनांक १२-६-८० से १७-६-८० तक श्रुतपंचमी महोत्सव उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस समारोह में पंडित केशरीचंदजी 'धवल' कोथली, डॉ० देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री नीमच, पंडित रमेशचंदजी इटावा, पंडित अरविन्दकुमारजी एटा, पंडित संतोषकुमारजी सोनगढ़ तथा पंडित रमेशकुमारजी ललितपुर पधारे। श्री धवलजी के प्रात: समयसार पर एवं रात्रि में रत्नकरण्डश्रावकाचार पर प्रवचन चलते थे। दोपहर में पंच-परमेष्ठी विधान पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' के तत्त्वावधान में संपन्न कराया गया। दिनांक १५-६-८० को युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा संचालित वाचनालय का उद्घाटन श्री बाबूलालजी एडवोकेट द्वारा किया गया, इसके पूर्व श्री जवाहरलालजी द्वारा ध्वजारोहण किया गया। अध्यक्षता डॉ० आर.के. जैन ने की। इस अवसर पर वाचनालय हेतु ३५०० रुपए समाज द्वारा प्रदान किये गये, ३७५० रुपए का सत्साहित्य भी बिका। दिनांक १६-६-८० को युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा का अधिवेशन हुआ। शाखा के मंत्री श्री लालजीरामजी ने संस्था की गतिविधियों की जानकारी दी। विभिन्न वक्ताओं ने अपने विचार प्रस्तुत किये। महावीर दल द्वारा 'भरत बाहुबली' नाटक प्रस्तुत किया गया। दिनांक १७-६-८० को जिनवाणी का विशाल जुलूस निकाला गया। इस अवसर पर आत्मधर्म के ६० नये ग्राहक बने। **— सुभाषचंद मोदी**

**उज्जैन ( म०प्र० ) :** दिनांक १४-६-८० से १७-६-८० तक युवा फैडरेशन के

तत्त्वावधान में श्रुतपंचमी महोत्सव का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पंडित विमलचंदजी झांझरी के आध्यात्मिक प्रवचन एवं भजन प्रतियोगिता, वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबंध प्रतियोगिता तथा युगलजी द्वारा रचित 'भरत बाहुबली' नाटक का आयोजन किया गया। श्रुतपंचमी के दिन भव्य शोभायात्रा निकाली गयी एवं सभा का आयोजन किया गया जिसमें विभिन्न वक्ताओं ने श्रुतपंचमी के महत्त्व पर प्रकाश डाला। — प्रदीप झांझरी

**भोपाल ( म०प्र० ) :** दिनांक १७-६-८० को श्रुतपंचमी के अवसर पर प्रातः जिनवाणी पूजन एवं ब्रह्मचारी हेमराज का 'श्रुत' के संबंध में मार्मिक प्रवचन हुआ। रात्रि में वीतराग-विज्ञान पाठशाला के बालकों द्वारा रोचक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

— सुभाष जैन

**इंदौर ( म०प्र० ) :** स्थानीय उदासीन आश्रम में श्रुतपंचमी पर्व उल्लासपूर्वक मनाया गया। प्रातः प्रभातफेरी एवं मंडल विधान-पूजन के पश्चात् पंडित रतनलालजी शास्त्री द्वारा कथा वाचन हुआ। तदुपरांत श्री मिश्रीलालजी गंगवाल की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया गया। जिसमें विभिन्न वक्ताओं ने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर 'श्रुतपंचमी महापर्व' पुस्तक का विमोचन श्री गंगवालजी द्वारा किया गया। — जयसेन जैन

**जयपुर ( राज० ) :** राजस्थान जैन साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में श्रुतपंचमी समारोह उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रातः जिनवाणी की भव्य रथयात्रा निकाली गयी। रात्रि में परिषद् परीक्षालय का दीक्षांत समारोह एवं श्रुतपंचमी महोत्सव बड़े दीवानजी के मंदिर में संपन्न हुआ। — डॉ० ताराचंद बख्शी

## नैरोबी में युवा फैडरेशन के बढ़ते कदम

**नैरोबी ( अफ्रीका ) :** स्थानीय स्वाध्याय मंदिर में दिनांक २१-३-८० को युवा फैडरेशन के सदस्यों की बैठक हुई। बैठक में प्रत्येक शुक्रवार और शनिवार को युवकों की धार्मिक कक्षाएँ चलाने का निर्णय किया। प्रारंभ में बालबोध पाठशाला भाग १ का अध्ययन प्रारंभ किया गया। बैठक के अंत में नैरोबी में हुई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की वी.डी.ओ. फिल्म दिखायी गयी। प्रत्येक रविवार को बच्चों की पाठशाला भी प्रारंभ की गयी। भविष्य में युवा फैडरेशन के सदस्य भारत आकर धार्मिक शिक्षण प्राप्त करने की भावना रखते हैं। — चिमनभाई कर्मणभाई, अध्यक्ष

## परीक्षा बोर्ड की मीटिंग संपन्न

चौदहवें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर वाशीम (अकोला) महाराष्ट्र में श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में दिनांक ६-६-८० को श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की मीटिंग संपन्न हुई।

परीक्षा बोर्ड की रिपोर्ट महामंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने सुनाई। उन्होंने बताया कि सन १९६८-६९ में परीक्षा बोर्ड की स्थापना हुई। उस वर्ष केवल ९ पाठशालाओं से ५७१ छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए थे और आज (सन् १९७९-८० में) ३३१ पाठशालाओं से १८४९९ परीक्षार्थी परीक्षा में सम्मिलित हुए हैं।

गुजराती और मराठी भाषी छात्रों की सुविधा के लिए गुजरात के अहमदाबाद और महाराष्ट्र के कोल्हापुर और अब शिरपुर में परीक्षा बोर्ड की शाखाएँ कार्य कर रही हैं। तमिल तथा कन्नड़ में शाखाएँ गठित करने के लिये श्री पंडित भरतचक्रवर्ती शास्त्री, मद्रास तथा श्री सेठ मनहरलालजी, बेंगलोर को अधिकृत किया गया है।

जिनवाणी के चारों अनुयोगों का अध्ययन करने की दृष्टि से परीक्षा बोर्ड बालबोध पाठमालाओं, वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं, तत्त्वज्ञान पाठमालाओं के साथ-साथ लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका, जैन सिद्धांत प्रवेशिका (बरैयाजी द्वारा रचित), छहढाला, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र), पुरुषार्थसिद्धिउपाय, मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों की ग्रंथशः परीक्षा भी लेता है।

इसके अलावा विशारद परीक्षा के चारों वर्षों के कोर्स में समयसार, समयसार नाटक, गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, परीक्षामुखसूत्र, आप्तमीमांसा, जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला आदि ग्रंथों का भी समावेश किया गया है।

## पाठशाला समिति की मीटिंग संपन्न

**वाशीम ( अकोला ) :** दिनांक ६-६-८० को भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंग संपन्न हुई। जिसमें महाराष्ट्र वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रचार समिति की रिपोर्ट डॉ. विजयलक्ष्मी पांगल ने प्रस्तुत की। आपने बताया कि महाराष्ट्र में ६१ वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खुल गयी हैं तथा इस वर्ष कम से कम ५० नई पाठशालाएँ खुलने की आशा है।

मद्रास के श्री पंडित भरत चक्रवर्ती शास्त्री ने भी तमिल प्रांत में दस वीतराग-विज्ञान

पाठशालाएँ खुलवाने तथा पाठशाला समिति की तमिल शाखा गठित करने संबंधी योजना प्रस्तुत की जो स्वीकृत की गयी।

समिति के महामंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने संस्था की रिपोर्ट सुनाते हुए कहा कि समिति के अंतर्गत ३३१ पाठशालाएँ चल रही हैं, जिनमें केवल १२७ पाठशालाएँ ही अनुदान लेती हैं।

इन पाठशालाओं की संचालन व्यवस्था तथा देखरेख केंद्रीय कार्यालय के अलावा महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश में कार्यरत प्रांतीय समितियाँ करती हैं।

पाठशालाओं के सुचारु संचालन के उद्देश्य से हमारे निरीक्षक गाँव-गाँव जाकर पाठशालाओं की गतिविधियों को नजदीकी से देखते हैं। वे पाठशालाओं के मंत्री, अध्यक्ष, अध्यापक तथा समाज से संपर्क करते हैं और उसकी रिपोर्ट हमें देते हैं तथा पाठशालाओं में कहीं कोई कमी नजर आती है, तो उनका मार्गदर्शन करते हैं।

**जयपुर ( राज० ) :** स्थानीय रोटरी क्लब के विशेष आग्रह पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का 'भगवान महावीर और उनकी अहिंसा' पर प्रभावपूर्ण व्याख्यान हुआ। इस अवसर पर क्लब के सदस्यों के अतिरिक्त अनेक गणमान्य महानुभाव भी पधारे थे।

## फार्म मंगा लें

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की ग्रीष्मकालीन परीक्षाएँ ६ व ८ जुलाई को हो जाने के बाद नया सत्र प्रारंभ हो रहा है। अत: सभी केंद्राध्यक्ष एवं अध्यापक महोदयों से निवेदन है कि वे पाठशालाएँ प्रारंभ होने की सूचना अवश्य देवें, जिससे उन्हें परीक्षा बोर्ड की नियमावली भेजी जा सके।

अनुदान लेनेवाली सभी नई व पुरानी वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ १९८०-८१ के लिये अनुदान प्राप्ति के फार्म मंगा लें। **— मंत्री, परीक्षाबोर्ड, ए-४, बापूनगर, जयपुर-४( राजस्थान )**

## श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड का पाठ्यक्रम स्वीकृत

**ईसरीबाजार ( बिहार ) :** ब्रह्मचारी पंडित नित्यानंदजी शास्त्री की प्रेरणा से यहाँ श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का पाठ्यक्रम पढ़ाना प्रारंभ कर दिया है। ग्रीष्मकालीन परीक्षा १९८० में ४२ छात्र परीक्षा में सम्मिलित हो रहे हैं। ब्रह्मचारीजी जहाँ भी जाते हैं, वहाँ समाज को पाठशाला चलाने की प्रेरणा अवश्य देते हैं तथा महिनों रहकर स्वयं पढ़ाते हैं।

**— मंत्री परीक्षाबोर्ड**

**अजमेर ( राज० ) :** वाशिम शिविर से लौटते हुए डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ९-५-८० को यहाँ पधारे। यहाँ आपके दो समय 'समयसार' ग्रंथ पर तात्विक प्रवचन हुए जिससे समाज ने लाभ उठाया।

— शिखरचंद जैन

**अलीगढ़ ( राज० ) :** स्थानीय जैन समाज की ओर से दिनांक ८ जून से १७ जून तक जैनदर्शन शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। प्रतिदिन विभिन्न वर्गों की शिक्षण कक्षाएँ, विद्वानों के प्रवचन, ज्ञानगोष्ठी एवं युवा फैडरेशन के कार्यकर्ताओं द्वारा भक्ति संगीत का कार्यक्रम चलता था। समापन समारोह पर विभिन्न वक्ताओं ने शिक्षण-शिविर की आवश्यकता तथा उपयोगिता पर प्रकाश डाला। अंत में परीक्षा में उत्तीर्ण छात्रों को पुरस्कार वितरण किया गया।

— राज गोधा

## पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

**गंज बासौदा ( म०प्र० ) से कु० उषा जैन बी.ए. लिखती हैं:—**

पूज्य कानजीस्वामी इस शताब्दी के महानतम पुरुष हैं, उनके अमृतमयी प्रवचन मानव मात्र को कल्याणकारी हैं। आत्मकल्याण का मार्ग इस आत्मधर्म से प्राप्त हो जाता है।

**गंज बासौदा ( म०प्र० ) से श्री महेशकुमारजी जैन लिखते हैं:—**

आत्मधर्म जैन समाज का सबसे श्रेष्ठ पत्र बन गया है, इसे पढ़कर मेरे हृदय में परिवर्तन आ गया है। पूज्य कानजीस्वामी की कृपा से मेरे ज्ञान में वृद्धि हुई है।

**कटनी ( म०प्र० ) से श्री उदय जैन शास्त्री, एम.ए. लिखते हैं:—**

आत्मधर्म आत्मकल्याण की बहुत वफादार पत्रिका महसूस हुई। जब आती है, तब एक साथ पूरी पढ़ने की इच्छा होती है, जब तक आती नहीं तब तक प्रतीक्षा ही करता रहता हूँ।

**चांदूर ( महाराष्ट्र ) से श्री रतनचंदजी जैन लिखते हैं: —**

आत्मधर्म के लेख बहुत ही उच्चकोटि के होते हैं। इसके पठन व मनन करने से आत्मशांति मिलती है।

**बुरहानपुर ( म०प्र० ) से श्री बी.टी. चंवरे, अध्यापक लिखते हैं: —**

आत्मधर्म का नया अंक पढ़ा। 'कहान कथा : महान कथा' बड़ी अच्छी लगी। इस प्रयास से जो स्वामीजी के चरित्र से अनभिज्ञ हैं, उन्हें उसका ज्ञान हो जावेगा। साथ ही उनकी महानता के दर्शन भी जनसाधारण को होंगे। आपका प्रयास स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है।

**सोनागिर ( म०प्र० ) से प्रकाशचंदजी चौधरी लिखते हैं: —**

आत्मधर्म के संपादकीय में 'जिनवरस्य नयचक्रम्' विषय वास्तव में समाज के लिये आपकी अनोखी देन होगी। वास्तव में आपके माध्यम से समाज में आध्यात्मिक क्रांति का सृजन हो रहा है।

**ईसरी ( बिहार ) से ब्रह्मचारी नित्यानंदजी शास्त्री लिखते हैं: —**

आत्मधर्म के अपूर्व लेख आगम अध्यात्म पढ़कर बहुत शांति प्राप्त होती है। धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय एवं नयों की प्रामाणिकता यह तो सिद्धांत की कुंजी है। 'जिनवरस्य नयचक्रम्' में आलापपद्धति, नयचक्र एवं श्लोकवार्तिक के सप्रमाण उदाहरण अपूर्व ही हैं।

**छिंदवाड़ा ( म०प्र० ) से श्री शांतिकुमारजी पाटनी, एडवोकेट लिखते हैं: —**

यों तो आपके सभी अंक पिछले से बढ़कर-निकलते हैं परंतु आपने जो चित्रकथा के अंतर्गत 'कहान कथा : महान कथा' देना चालू किया है, उससे नई उत्सुकता जागृत हो गई है। आपके कुशल मार्ग निर्देशन में पत्रिका दिन व दिन रोचक और पठनीय बनती रहेगी, ऐसी आशा है।

**अमरावती ( महाराष्ट्र ) से श्री उदयचंदजी जैन लिखते हैं: —**

आत्मधर्म में अनंत उपकारी पूज्य गुरुदेव की जीवनी पर जो चित्रकथा 'कहान कथा : महान कथा' दी जा रही है, वह बहुत सुंदर एवं उपयोगी है। यह विशेषकर बालकों के मन पर अति प्रभाव कर रही है, अगले आत्मधर्म की बालक प्रतीक्षा करते हैं।

# कहान कथा : महान कथा

चित्रकथा : अनन्त कुशवाहा

Registration. No. RJ-2712

## अमृत-कण

### पुण्य-पाप

**सोविण्णयं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।**
**बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥१४६॥**

जिसप्रकार लोहे की बेड़ी के समान सोने की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है। उसीप्रकार अशुभ (पाप) कर्म के समान शुभ (पुण्य) कर्म भी जीव को बाँधता है।

**— आचार्य कुन्दकुन्द : समयसार, गाथा १४६**

**पुण्णि पावइ सग्ग जिउ पावएँ णरय-णिवासु।**
**वे छंडिवि अप्पा मुणई तो लब्भई सिववासु॥३२॥**

पुण्य से जीव स्वर्ग पाता है और पाप से नरक पाता है। जो इन दोनों को छोड़कर आत्मा को जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

**— योगीन्दुदेव : योगसार, गाथा ३२**

**सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णसु।**
**परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये॥१८१॥**

पर के प्रति शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है तथा दूसरों के प्रति प्रवर्तमान नहीं है ऐसा आत्म परिणाम आगम में दुःख-क्षय (मोक्ष) का कारण कहा है।

**— आचार्य कुन्दकुन्द : प्रवचनसार, गाथा १८१**

**अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।**
**अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत॥**

अव्रतों से पाप होता है और व्रतों से पुण्य तथा दोनों के अभाव से मोक्ष होता है। इसलिए मोक्षार्थी के लिए अव्रतों के समान व्रत भी छोड़ देना चाहिये।

**— आचार्य पूज्यपाद : समाधिशतक, गाथा ८३**

**मुकति के साधक कौं बाधक करम सब,**
**आत्मा अनादि कौ करम मांहि लुक्यौ है।**
**एते पर कहै जो कि पाप बुरौ पुन्न भलौ,**
**सोई महामूढ़ मोख मारग सौ चुक्यौ है॥**

**— पंडित बनारसीदास : नाटक समयसार, पुण्य-पाप एकत्व द्वार, दोहा १३**

## प्रबंध संपादक की कलम से —

**कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें—**

(१) सभी वार्षिक ग्राहकों के नंबर बदल दिए हैं कृपया आत्मधर्म पर चिपकी पते की स्लिप से अपना नया ग्राहक नंबर अवश्य नोट पर लें।

(२) यह अंक उन्हीं ग्राहकों को भेज जा रहा है। जिनकी शुल्क हमारे यहाँ या तो पहिले से ही जमा है या फिर ५-७-८० तक हमें प्राप्त हो चुकी है।

(३) जिनकी शुल्क जमा है, उनके पास भी यदि भूल से मनीआर्डर फार्म पहुँच गया है तो वे चिंता न करें, उन्हें आगामी अंक बराबर भेजे जावेंगे।

(४) बहुत से भाइयों के पत्र आते हैं कि इस वर्ष भेंट की पुस्तक प्राप्त होगी या नहीं? इस संबंध में यथासमय सूचना दी जावेगी।

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

*If undelivered please return to :*
**प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म**
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४